युवराज

अजन्त प्रकरणम्

डॉ० मधुर लता द्विवेदी

[बी० ए०, एम० ए०, समकक्ष संस्कृत एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए]

महामहोपाध्याय श्रीवरदराजाचार्यविरचिता

लघु/मध्यसिद्धान्त कौमुदीस्थ

अजन्त प्रकरणम्

(अनुवृत्ति क्रम, सूत्रार्थ, भावार्थ, विस्तृत हिन्दी व्याख्या, प्रयोगसिद्धि सहित)

छात्रोपयोगी एवं परीक्षोपयोगी संस्करण

व्याख्याकर्त्री

डॉ० (श्रीमती) मधुर लता द्विवेदी

एम० ए०, पी-एच० डी०

असि० प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कोंच (जालौन) उत्तर प्रदेश

युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा—2

श्री रामः शरणं ममः

आत्म-निवेदन

संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वप्राचीन भाषा है, इसमें सभी विद्वान एक मत है। विश्व में मानवीय सभ्यता का मूलभूत ज्ञान संस्कृत से ही मिलता है और समग्र ज्ञान की मञ्जूषा है व्याकरण। जब तक हमें व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा तब तक भाषा का ज्ञान असम्भव है। इसलिए भाषात्मक ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान परमावश्यक है।

संस्कृत जगत में व्याकरण का चरम-चिन्तन होते हुए भी विषय गम्भीरता और दुरूहता से आज का विश्व समुदाय संस्कृत व्याकरण से नितान्त अपरिचित-सा है। महर्षि पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण की 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ की रचना करके भाषा को सुव्यवस्थित किया है। महर्षि कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इसे और भी बोधगम्य बना दिया है। प्राचीन प्रणाली को सरलता से बोध करने के लिए भट्टोजि दीक्षित आदि महर्षियों ने वैयाकरण 'सिद्धान्त कौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना की। उनके ही शिष्य वरदराजाचार्य ने सुकुमारमति वाले एवं व्याकरणशास्त्र के जिज्ञासु छात्र-छात्राओं के लिए 'लघुसिद्धान्त' और 'मध्यसिद्धान्त' कौमुदी की रचना की। इसी मध्यसिद्धान्त कौमुदी और लघुसिद्धान्त कौमुदी के एक अंश 'अजन्त प्रकरणम्' को वृत्ति, अर्थ, व्याख्या और रूप सिद्धि सहित छात्र-छात्राओं को बोधगम्य और रुचिपूर्ण बनाने का मैंने प्रयास किया है, मेरे इस प्रयास से सभी पठन-पाठन करने वाले छात्र-छात्राएँ अवश्य ही लाभान्वित हों यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

मेरे इस कार्य में अध्ययन काल से ही प्रेरणास्रोत रहे संस्कृत जगत् के प्रकाण्ड विद्वान मथुरा प्रसाद, स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच के पूर्व प्राचार्य गुरुवर डॉ० के० एन० द्विवेदी जी जिन्होंने समय-समय पर आने वाली त्रुटि सम्बन्धी बाधाओं को बड़ी ही सहजता से दूर कर दिया। मैं अभारी हूँ डॉ० ओ० पी० शास्त्री, विभागाध्यक्ष संस्कृत, नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय ललितपुर, एवं डॉ० टी० आर० निरञ्जन, प्राचार्य मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच, पं० राघवराम शास्त्री, प्रधानाचार्य संस्कृत विद्यालय कोंच, जिन्होंने समयाभाव होने पर भी मेरा पदे-पदे मार्ग दर्शन कराते हुए मुझे प्रोत्साहित किया।

परम श्रद्धेय गुरुवर 'स्व० श्री सत्यनारायण बुधौलिया जी साहित्याचार्य' का मैं हृदय से आभार व्यक्त करते हुए शुभाशीष प्राप्त करना चाहती हूँ और आशा करती हूँ कि उनका दिव्य प्रकाश मेरे हृदय को निरन्तर प्रकाशित करता रहे।

मैं अपने पितृतुल्य पूज्यनीय श्वसुर श्री तुलसीराम द्विवेदी और श्री भगवान दा द्विवेदी एवं श्वश्रू: श्रीमती शान्ति द्विवेदी और श्रीमती माया द्विवेदी को सादर प्रणा करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य को और भी सुबोध एवं सरस बनाने के लिए स दिशा और अपना श्रम प्रदान किया। मैं अपने पूज्यनीय पति एडवोकेट श्री संजी कुमार द्विवेदी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने अपने ज्ञान क ज्योति से मेरे अन्त: ज्ञान को प्रकाशित कर प्रखर बनाने का सफल प्रयास किया।

मैं अपने पूज्यनीय पिता श्री विष्णुदेव शर्मा, माताजी श्रीमती विजया देवी शर्म और भ्राता सत्येश कुमार शर्मा को सस्नेह नमन करते हुए शुभाशीष चाहती हूँ कि उन्हों जो संस्कार मुझे दिये हैं, उन्हें और भी विकसित रूप से प्रकट करने का मुझे सुअवस प्राप्त हो।

मेरे कार्य में सहयोग करने वाले मेरे पुत्र द्वय स्वप्निल द्विवेदी और संस्कार द्विवेदी एवं भतीजी साक्षी शर्मा एवं तैजस् की भी प्रशंसा करते हुए माँ भारतीय से मैं प्रार्थना करती हूँ कि अपनी कृपा दृष्टि उन पर सदैव बनाये रहें जिससे उनका मार्ग प्रशस्त हो।

मैं युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अग्रज के समान मुझे छात्र–छात्राओं की सफलता के लिए इस लेखन कार्य का दायित्व सौपा है। उनका यह कार्य अवश्य ही साधुवाद के पात्र हैं

संस्कृत व्याकरण के अजन्त प्रकरण से विद्यार्थीगण को लाभान्वित करने के लिए मैंने जो प्रयास किया है वह सार्थक हो ऐसी मैं आशा रखती हूँ फिर भी मानव स्वभाववश यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो विद्वज्जन अवश्य ही मेरा मार्गदर्शन करेंगे। आप सभी विद्वानों के आशीर्वाद से ही मेरा यह लेखन कार्य सम्भव हो सका है, अत: आप सभी को मेरा कोटिश: प्रणाम! मैं उन विद्वानों का भी हृदय से आभार ज्ञापित करती हूँ जिनके ग्रन्थों के सहयोग से मैंने सहायता प्राप्त की ऐसी महान् विभूतियों को शत्–शत् नमन! अन्त में–

"कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि।।"

"इति शुभम्"

विद्वदाराधिका
—मधुर लता द्विवेदी

विषयानुक्रमणिका

नोट—यह पुस्तक मध्यसिद्धान्त कौमुदी और लघुसिद्धान्त कौमुदी का सम्मिलित रूप है। मध्यसिद्धान्त कौमुदी में लघुसिद्धान्त कौमुदी की अपेक्षा कुछ सूत्र अतिरिक्त हैं, अतः लघुसिद्धान्त कौमुदी का पठन-पाठन करने वाले विद्वानों एवं छात्र-छात्राओं से अनुरोध है कि वे उन अतिरिक्त सूत्रों को छोड़कर ही पठन-पाठन करें। वे अतिरिक्त सूत्र निम्नलिखित हैं—

क्र० सं०	सूत्र सं०	सूत्र	पृ० सं०
१.	१०	(वा०) अयोगवाहानामकारस्योपरि, शर्षु चेति वाच्यम्।	१६
२.	३६	अपदान्तस्यमूर्धन्यः।।८।३।५५।।	२६
३.	३७	इण्कोः।।८।३।५७।।	२६
४.	४७	एक शब्दः संख्यां०—(वा०) अन्तरायां पुरि।	३५
५.	४८	तृतीयासमासे।।१।१।३०।।	३७
६.	४९	द्वन्द्वे च।।१।१।३१।।	३७
७.	५०	विभाषा जसि।।१।१।३२।।	३७
८.	५३	पद्दन्नोमास्०	४०
९.	११३	(वा०) असंयुक्ता ये०	९०

✤

संस्कृत व्याकरण

विषय-प्रवेश

भाषा मानव-मात्र के लिए भावों एवं विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। इसके अभाव में लोक-यात्रा सम्भव नहीं है। 'आचार्य दण्डी' ने 'शब्द' को लोक को प्रकाशित करने वाली वह ज्योति कहा है जिसके अभाव में सम्पूर्ण विश्व अविद्या के अन्धकार में डूब जाता हैं। **काव्यादर्श** में स्पष्ट कहा है—

"इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते।।"

संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए व्याकरण का ज्ञान अनिवार्य है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा में व्याकरण को अधिक महत्त्व दिया गया है। वि + आङ् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय होकर व्याकरण शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृति-प्रत्यायदयोऽनेन अस्मिन वा तद् व्याकरणम्' अर्थात् प्रकृति-प्रत्ययादि के विवेचन से शब्द के वास्तविक रूप का स्पष्ट निर्धारण करके शिष्टजनोचित शब्द प्रयोग का ज्ञान कराना व्याकरण का मुख्य उद्देश्य है। इस शास्त्र की महत्ता को देखते हुए कहा भी गया है—

"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलः शकलः सकृच्छकृत्।।"

संस्कृत में अनेक पद्धतियों से अनेक व्याकरण ग्रन्थों की रचना हुई थी किन्तु पाणिनि व्याकरण का उदय होते ही प्रायः उस समय के सभी व्याकरणों की स्मृति मात्र शेष रह गयी। आगे चलकर पाणिनि-व्याकरण का साम्राज्य अत्यधिक व्यापक हो गया।

संस्कृत व्याकरण की समस्त पद्धतियों में पाणिनि व्याकरण का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। विकास क्रम की दृष्टि से इसके तीन युग माने जाते हैं—

१. **प्रथम युग**—(लगभग ५०० ई० पू० से ईसा की प्रथम शताब्दी तक) मौलिक रचना तथा विवेचन का समय।

२. **द्वितीय युग**—(१३०० ई० तक) टीकाओं का समय।

३. **तृतीय युग**—(१३०० ई से आगे) प्रक्रिया तथा शास्त्रार्थ का समय।

प्रथम युग पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि का समय है। इन तीनों को ही व्याकरण शास्त्र में 'मुनित्रय' कहा जाता है।

प्रथम युग-मुनित्रय

आचार्य पाणिनि—(५०० ई० पू० तथा ३५० ई० पू० के मध्य) महर्षि पाणिनि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। वेबर तथा मैक्समूलर के अनुसार पाणिनि का समय

३५० ई० पू० है। डॉ० गोल्डस्टुकर तथा भण्डारकर ने उनका समय ५०० ई० पू० माना है। पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने २४०० ई० पू० बतलाया है, तो पं० युधिष्ठिर मीमांसक २८०० वि० पू० बतलाते हैं। सभी विद्वानों ने अपने मत पुष्टि के लिए युक्ति तथा प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। फिर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि पाणिनि का समय क्या है ?

त्रिकाण्डशेष कोश में पाणिनि के छह नामों का उल्लेख किया गया है—पाणिनि, पाणिन, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय तथा आहिक। इनमें से पाणिनि नाम अधिक प्रसिद्ध है। दाक्षीपुत्र (दाक्षीपुत्रस्य पाणिने:) तथा शालातुरीय शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। दाक्षीपुत्र शब्द से ज्ञात होता है कि उनकी माता का नाम दाक्षी था। शालातुरीय शब्द से ज्ञात होता है कि पाणिनि या उनके पूर्वज शालातुर ग्राम के रहने वाले थे। विद्वानों का मानना है कि पश्चिमी पंजाब में अटक जिले में सम्प्रति 'लाहुर' नामक ग्राम ही प्राचीनकाल में शालातुर कहलाता था। पाणिनि के जीवन-वृत्त के विषय में अधिक ज्ञात न होने पर पञ्चतन्त्र के एक श्लोक के आधार पर यह कल्पना अवश्य की जाती है कि उनकी मृत्यु एक सिंह के द्वारा हुई थी। इसी परम्परा के आधार पर यह भी माना जाता है कि उनकी निधन तिथि त्रयोदशी है।

पाणिनि की प्रतिभा अनूठी थी। वे संस्कृत भाषा के अद्वितीय विद्वान थे। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। सभी मुनियों एवं विद्वानों का उनके प्रति श्रद्धा भाव था। महाभाष्यकार का कथन है कि उनके सूत्रों में एक वर्ण भी अनर्थक नहीं है। काशिकाकार का कथन है कि सूत्रकार की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है 'सूक्ष्मेक्षिका सूत्रकारस्य'।

पाणिनि की रचनाओं में अष्टाध्यायी या पाणिनीयाष्टक का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा का अनमोल रत्न है। इसकी समानता कोई भी नहीं कर सकता। इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय चार-चार पादों में विभाजित है तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ में ३९९५ सूत्र हैं।

भगवान पाणिनि ने शब्दानुशासन द्वारा संस्कृत भाषा को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने का प्रयास किया है। पाणिनी ने व्याकरण के सर्वसम्मत नियमों के साथ-साथ पूर्ववर्ती वैयाकरणों के विशिष्ट मतों का भी उल्लेख किया है। यथा—लोपः शाकल्यस्य। ८।३।१९। अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३। आदि। पाणिनि-व्याकरण संस्कृत भाषा की अमूल्य निधि है। इस अनुपम रचना का उदय होते ही प्राचीन व्याकरण की आभा मानो लुप्त हो गयी है। आगे भी यह रचना अनुपमेय ही रहेगी ऐसा मेरा मानना है।

कात्यायन (५०० ई० पू० से ३०० ई० पू० के मध्य)

मुनि कात्यायन व्याकरणशास्त्र में वार्तिककार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें वररुचि नाम से भी जाना जाता है। उनके समय के विषय के विद्वानों के अनेक मत हैं। आधुनिक विद्वानों ने उनका समय ५०० ई० पू० तथा ३०० ई० पू० के मध्य माना है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार उनका समय विक्रम पूर्व २७०० वर्ष है। एक वार्तिक की व्याख्या में महाभाष्यकार ने कहा है—'प्रियतद्धिता: दाक्षिणात्य:' इस कथन से अनुमान होता है कि वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे।

कात्यायन का भाषाविषयक ज्ञान अगाध था। उनकी दृष्टि एक समीक्षक की दृष्टि थी। उन्होंने पाणिनि के सूत्रों की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना करके उनकी कमियों को दूर करने का सफल प्रयास किया तथा अष्टाध्यायी के लगभग १५०० सूत्रों पर लगभग ४००० वार्तिक लिखे हैं।

पाणिनि व्याकरण के विकास और परिष्कार में कात्यायन का विशेष योगदान है। उनकी आलोचना में अनुसन्धान की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है दुर्भावना की नहीं। डॉ० वेलवल्कर का यह कथन यथार्थ सत्य है कि "कात्यायन के वार्तिकों का लक्ष्य पाणिनि के सूत्रों में संशोधन और परिवर्धन है।"

पतञ्जलि (२०० ई० पू० तथा प्रथम ई० शती के मध्य)

पतञ्जलि ने महाभाष्य नामक ग्रन्थ की रचना की है, अतः वे महाभाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके समय के विषय में भी सभी विद्वान मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका समय ईसा की प्रथम शती है। डॉ० वेलवल्कर ने उनका समय १५० ई० पू० माना है। इस मत का आधार है कि महाभाष्यकार ने एक सूत्र की व्याख्या में लिखा है—'इह पुष्यमित्रं याजयामः' (यहाँ पुष्यमित्र को यज्ञ कराते हैं)। इससे ज्ञात होता है कि पतञ्जलि ने पुष्यमित्र को यज्ञ कराया था, अतः वे पुष्यमित्र के समकालीन थे। इतिहासकारों ने पुष्यमित्र का समय १५० ई० पू० माना है। अतः पतञ्जलि का समय भी यही है इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी इस मत की पुष्टि की गई है, किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका विचार है कि भारतीय गणना के अनुसार पुष्यमित्र का समय १२०० ई० पू० के लगभग होना चाहिए, अतः पतञ्जलि का समय भी वही होगा।

पतञ्जलि को शेषनाग का अवतार माना जाता है। अतः कहीं-कहीं उनके लिए फणिभृत्, अहिपति आदि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उन्होंने अपने मत प्रकट करते हुए गोनर्दीय शब्द का प्रयोग किया है—'गोनर्दीयस्त्वाह'। इससे ज्ञात होता है कि वे गोनर्द प्रदेश के रहने वाले थे। व्याख्याकारों का मत है कि जहाँ गाय-बैल अधिक हृष्ट-पुष्ट होकर विशेष रूप से नाद करते हैं (सम्प्रति पंजाब तथा हरियाणा) सम्भवतः यही प्रदेश पतञ्जलि का निवास स्थान रहा होगा।

पतञ्जलि ने पाणिनि के मुख्य-मुख्य सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों की सोदाहरण व्याख्या की है। पाणिनि के प्रति उनकी अधिक श्रद्धा प्रकट होती है। पतञ्जलि के मतानुसार जिस भगवान पाणिनि का एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हो सकता, भला उसके दोष-दर्शन का दुस्साहस कैसे किया जा सकता है ? वार्तिककार के वार्तिकों की भी महाभाष्यकार ने व्याख्या की है और उनकी उपयोगिता पर विचार भी किया है। साथ ही सूत्रकार एवं वार्तिककार के वचनों की समीक्षा करते हुए अपना निर्णय भी दिया है। पाणिनीय व्याकरण में महाभाष्य के मन्तव्य सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। 'यथोन्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' इस न्याय के अनुसार पाणिनि के वचनों से अधिक पतञ्जलि के वचन प्रामाणिक हैं।

व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से ही नहीं अपितु शैली की दृष्टि से भी पतञ्जलि का कार्य सर्वोपरि है। उन्होंने रोचक शैली तथा प्रवाहमयी भाषा में व्याकरण के सूक्ष्म तत्त्वों का विश्लेषण करके नीरस विषय को सरस, सरल बना दिया। पतञ्जलि के महाभाष्य

की समानता करने वाला संस्कृत में केवल एक ही भाष्य ग्रन्थ है, वह है शङ्कराचार्य का प्रसन्न-गम्भीर ब्रह्मसूत्र भाष्य। इसमें व्याकरण के विषयों का रुचिकर एवं सुबोध शैली में प्रतिपादन होने के साथ ही धर्म, संस्कृति, इतिहास, भूगोल आदि विषयों से सम्बन्धित अनेक उपादेय बातों का सहज ही समावेश हो गया है जिससे यह ग्रन्थ-रत्न इन सबका एक महाकोष बन गया है।

पतञ्जलि के महाभाष्य के साथ ही पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अन्त होता है। पाणिनि के साथ कात्यायन और पतञ्जलि ने संस्कृत व्याकरण की पाणिनीय पद्धति को प्रकर्ष पर पहुँचा दिया। इसीलिए परवर्ती काल में इन तीनों को 'मुनित्रय' के नाम से उल्लिखित किया गया है। आगे चलकर अष्टाध्यायी पर जयादित्य और वामन ने काशिका नाम से एक टीका लिखी। यह संस्कृत जगत में वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है। जयादित्य का समय ईसवीय सप्तम् शताब्दी है। काशिका पर आठवीं शताब्दी में 'जिनेन्द्र बुद्धि' ने 'न्यास' और ग्यारहवीं शताब्दी में हरदत्त मिश्र ने 'पदमञ्जरी' लिखी। सप्तम् शताब्दी में ही 'भर्तृहरि' ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वाक्यपदीयम्' में व्याकरण शास्त्र का दार्शनिक विवेचन किया। यह ग्रन्थ कारिकाओं में निर्मित है और स्फोटबाद की स्थापना करता है। भर्तृहरि की महाभाष्य-दीपिका महाभाष्य की टीकाओं में सर्वप्राचीन टीका है। महाभाष्य पर काश्मीरी पण्डित कैयट ने 'प्रदीप' नामक अत्यन्त प्रौढ़ टीका लिखी। इस युग की अन्तिम रचना कैयट की प्रदीप नामक टीका ही कही जा सकती है।

पाणिनीय व्याकरण का तृतीय युग हरिदत्त और कैयट के कुछ समय पश्चात् धर्मकीर्ति के 'रूपावतार' से होता है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का अन्त और बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता हैं इसके बाद १३५० ई० के लगभग विमल सरस्वती ने 'रूपमाला' लिखी। पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रामचन्द्र ने 'प्रक्रिया-कौमुदी' लिखी। ये सब ग्रन्थ अष्टाध्यायी को सरल बनाने के लिए लिखे गये थे। प्रकरणानुसार लिखे गये इन ग्रन्थों में मुख्य त्रुटि यह थी कि इनमें अष्टाध्यायी के समस्त सूत्र नहीं लिये गये थे। इस त्रुटि को दूर करने के लिए सत्रहवीं शताब्दी में भट्टोजि दीक्षित ने इस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति 'सिद्धान्त-कौमुदी' की रचना की।

इस परम्परा के सर्वाधिक दैदीप्यमान नक्षत्र नागेश भट्ट हैं जिनका समय १६७० से १७५० ई० के मध्य माना जाता है। ये भट्टोजि दीक्षित के पौत्र और हरिदीक्षित के शिष्य थे। कैयट के महाभाष्य प्रदीप पर इनकी उद्योत टीका वास्तविक भाष्य प्रतिपादित विषयों के शास्त्रीय पक्ष को समुद्योतित करने वाली है। प्रौढ़ मनोरमा की लघु एवं बृहत् व्याख्या प्रस्तुत करने वाले इनके 'लघुशब्देन्दुशेखर' और 'बृहच्छब्देन्दुशेखर' ग्रन्थ सर्व विदित है। पाणिनीय व्याकरण की परिभाषाओं की व्याख्या प्रस्तुत करने वाला परिभाषेन्दुशेखर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थरत्न है। पाणिनीय व्याकरण के दार्शनिक पक्ष को प्रौढ़तम रूप देने वाला इनका ग्रन्थ-रत्न 'मञ्जूषा' है। लघुमञ्जूषा और परमलघुमञ्जूषा इसी के दो रूप हैं। इनका स्फोटवाद वैयाकरणों के प्रसिद्ध स्फोट सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह ध्रुव सत्य है कि नागेशभट्ट जैसे कीर्तिमान विचारक और व्याख्याता से संस्कृत का पाणिनीय व्याकरण-शास्त्र दैदीप्यमान हो गया है।

❖

श्री रामः शरणं मम

अथ अजन्त प्रकरणम्

अथ अजन्त पुल्लिङ्ग प्रकरणम्

प्रातिपदिकसंज्ञा विधायक संज्ञासूत्रम्

१. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।१।२।४५।

वृत्ति—धातुं प्रत्ययं प्रत्यान्तं च वर्जयित्वार्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिक संज्ञं स्यात्।

संस्कृत भाषा में शब्द ज्ञान अर्थात् पदज्ञान की आवश्यकता होती है। **"शब्दयते इति शब्दः"**—'शब्द' धातु से 'घञ्' प्रत्यय होकर 'शब्द' रूप निष्पन्न होता है। शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में हुआ है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने शब्द का अनुशासन ही व्याकरण का विषय कहा है। शब्द या पद भी तीन प्रकार के माने गये हैं—(१) सुबन्त, (२) तिङन्त, और (३) अव्यय।

यहाँ सुबन्त शब्दों का विवेचन किया जा रहा है। सुबन्त शब्दों में **अजन्तपुल्लिङ्गप्रकरण** प्रथम है, क्योंकि माहेश्वर सूत्रों में अच् वर्ण पहले आते हैं।

सुप् प्रत्यय इक्कीस (२१) होते हैं। यथा—सु, और, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप्। सु औ के सु से लेकर अन्तिम प्रत्यय सुप् के पकार को लेकर सुप् प्रत्याहार माना गया है। जिसमें पूरे इक्कीसों प्रत्यय आ जाते हैं। सुप् प्रत्यय जिस शब्द के अन्त में लगे हों उस शब्द और प्रत्यय के समूह को सुबन्त कहते हैं और "सुप्तिङन्तं पदम्" से इनकी पद संज्ञा हो जाती है पदसंज्ञा होने के बाद यह 'पद' कहलाता है। जब तक कोई शब्द पद नहीं होता तब तक उसको भाषा के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

सुबन्त अर्थात् सुप् प्रत्यय जिनके अन्त में होते हैं ऐसे शब्द प्रथमतः दो प्रकार के होते हैं—**अजन्त** और **हलन्त**। जिन शब्दों के अन्त में अच् प्रत्याहार के वर्ण होते हैं उन्हें अजन्त और जिन शब्दों के अन्त में हल् वर्ण होते हैं ऐसे शब्द हलन्त कहलाते हैं। पुनः अजन्त और हलन्त दोनों ही शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग करके तीनों ही लिङ्ग में है। जिसका वर्गीकरण निम्नवत् किया गया—

(१) अजन्त पुल्लिङ्ग, (२) अजन्तस्त्रीलिङ्ग, (३) अजन्तनपुंसकलिङ्ग

(४) हलन्त पुल्लिङ्ग, (५) हलन्तस्त्रीलिङ्ग, (६) हलन्तनपुंसक लिङ्ग।

इस प्रकार से इनके छः भेद हो जाते हैं और इन्हें षड्लिङ्ग भी कहा जाता है। सर्वप्रथम अजन्तपुल्लिङ्ग शब्दों का प्रदर्शन किया जा रहा है।

अर्थ–(१) **अर्थवत्**–धातुभिन्न प्रत्ययभिन्न और प्रत्ययान्तभिन्न जो अर्थवान् शब्द स्वरूप वह प्रातिपादिक संज्ञक हो।

सूत्र व्याख्या–इस अजन्त पुल्लिङ्ग प्रकरण में अजन्त (अच् + अन्त) अर्थात् स्वर हो अन्त में जिसके, ऐसे शब्दों के रूपों की सिद्धि का प्रकार बतलाया गया है। यथा–राम, कवि, भानु आदि स्वरान्त होने से अजन्त पुल्लिङ्ग शब्द हैं। यह सूत्र संज्ञा विधायक सूत्र है और उन्हीं शब्दों को प्रातिपदिक संज्ञक बनाता है जिनमें निम्न चार विशेषताएँ होती हैं–

अधातुः (धातुभिन्न) **अप्रत्ययः** (प्रत्ययभिन्न) **प्रत्ययान्त** (जिसके अन्त में कोई प्रत्यय हो) **अर्थवान्** (जो सार्थक हो)।

(१) **अधातुः** (धातुभिन्न) वही शब्द प्रातिपदिक संज्ञक होता है जो धातु न हो; यथा–पठ्, ब्रू, गम् आदि धातुयें सार्थक होते हुए भी प्रातिपदिक संज्ञक नहीं मानी जाती, क्योंकि इनमें प्रातिपदिक संज्ञक से होने वाले सु, औ, जस् प्रत्यय नहीं होते।

(२) **अप्रत्ययः** (प्रत्ययभिन्न) जो प्रत्यय न हो वही शब्द प्रातिपदिक होता है; यथा–सु, औ, जस् आदि प्रत्यय है अतः इनकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी।

(३) **प्रत्ययान्त** (जिसके अन्त में कोई प्रत्यय हो) प्रत्ययान्त शब्द की भी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती।

(४) **अर्थवान्** (जो सार्थक हो) जो धातु, प्रत्यय और प्रत्यान्त न हो किन्तु अर्थवान् हो, उसी की प्रातिपदिक संज्ञा होगी। यथा–राम, हरि, भानु आदि सभी शब्द सार्थक होने से प्रातिपदिक संज्ञक हैं।

अर्थवदिति सूत्र से सम्बन्ध में एक प्राचीन सूक्ति प्रचलित है–

"विद्वान कीदृग् वचो ब्रूते, को रोगी कश्च नास्तिकः।
कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति, तत्सूत्रं पाणिनेर्वद।।"

अर्थात् विद्वान कैसा वचन बोलता है (अर्थवत्) रोगी कौन होता है, अधातुः (बलरहित) कौन नास्तिक कहा जाता है, अप्रत्ययः (विश्वास रहित)। लोग कैसे चन्द्रमा को नहीं देखते (प्रातिपदिक अर्थात् प्रतिपद्) परिवा या एकमा में होने वाले चन्द्रमा को लोग नहीं देखते।

अब प्रश्न यह उठता है कि जो प्रत्ययान्त शब्द है उनकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है तो राम शब्द प्रत्ययान्त होने पर यह सूत्र राम शब्द की प्रातिपादिक संज्ञा कैसे करेगा ? इसके समाधानार्थ शब्दों को दो भागों में रखा गया है–(१) व्युत्पन्न अर्थात् यौगिक और (२) अव्युत्पन्न अर्थात् रूढ़। व्युत्पन्न शब्द वे कहलाते हैं जिसमें धातु, प्रकृति एवं प्रत्यय भिन्न-भिन्न अर्थ होते हुए भी समुदाय में एक ही अर्थ होता है और अव्युत्पन्न उन्हें कहते हैं जिनमें धातु, प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना के बिना एवं उनके अर्थ विशेष की अपेक्षा के बिना केवल सामान्य अर्थ समझा जाता है। यथा–'रमन्ते योगिनो यस्मिन् सः रामः' अर्थात् जिस ब्रह्म में योगिजन रमण करते हैं वह राम है, ऐसा अर्थ वाला राम शब्द **रमु क्रीडायाम्** धातु से **घञ्** प्रत्यय (अ) होकर बनता है, जिसमें प्रकृति और प्रत्यय दोनों के विशेष अर्थ एक हो जाते हैं, इसलिए यह शब्द व्युत्पन्न है।

जब राम शब्द का प्रयोग सामान्य व्यक्ति के लिए किया जाता है तब वहाँ न धातु का अर्थ घटित होता है और न प्रत्यय का। अतः ऐसा राम शब्द अव्युत्पन्न होता है और ऐसे अव्युत्पन्न शब्द की प्रातिपादिक संज्ञा **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से ही होती है। किन्तु जो व्युत्पन्न शब्द है, उनकी प्रातिपदिक संज्ञा अग्रिम सूत्र **कृत्तद्धित समासाश्च** से होती है।

प्रातिपदिक संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

२. कृत्तद्धितसमासाश्च।।१।२।४६।।

वृत्ति—कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः। (कृत्—तद्धित—अन्तौ, समासाः च तथा स्युः)

२. कृत्तद्धितसमासाश्च—कृत् प्रत्ययान्त कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययान्त तद्धितान्त और समासान्त शब्द भी प्रातिपदिक संज्ञक होते हैं।

व्याख्या—पाणिनि व्याकरण में अन्य प्रकरणों के समान ही कृदन्त, तद्धित एवं समास विधायक प्रकरण भी है। इन तीनों प्रकार के शब्दों की उक्त सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

कृदन्त—ये कृत् प्रत्यय धातु के बाद लगते हैं। धातु के बाद लगने वाले प्रत्ययों को तिङ् और कृत् कहते हैं। तिङ् प्रत्ययों को छोड़कर शेष प्रत्यय कृत् संज्ञक होते हैं। धातु से कृत् प्रत्यय लगाने पर वे शब्द कृदन्त कहलाते हैं।

तद्धितान्त—सुबन्त शब्दों से तद्धित प्रत्यय होते हैं। जब सुबन्त शब्दों के विशेष अर्थ के प्रतिपादन के लिए जो प्रत्यय होते हैं, जब उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते हैं। तद्धित प्रत्यय हो अन्त में जिसके ऐसे शब्दों को तद्धितान्त शब्द कहते हैं।

समासान्त—समास दो या दो से अधिक पदों में होता है, समास होने पर उनकी भिन्न विभक्तियों का लोप हो जाता है और अन्त वाले शब्द में कोई विभक्ति होकर एक पद बन जाता है। यथा—रामः + हरिः + श्यामः = रामहरिश्यामाः; राज्ञः पुरुषः = राजपुरुष आदि समास हो जाने पर उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

यह सूत्र कृदन्त, तद्धितान्त और समास की प्रातिपदिक संज्ञा करता है। इस सूत्र से जिसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है वह शब्द यौगिक अर्थात् व्युत्पन्न ही होता है। अतः यहाँ पर व्युत्पन्न पक्ष के राम शब्द की 'कृत्तद्धिसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा होती है और अव्युत्पन्न पक्ष के राम शब्द की **अर्थवद धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

स्वादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्य स्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्।।४।१।२।।

वृत्ति—सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी।

व्याख्या—सु औ जस् आदि ये प्रत्यय ङीप्रत्यान्त, आप्प्रत्ययान्त और प्रातिपदिक शब्दों से परे होते हैं।

उक्त सूत्र प्रथमा आदि सातों विभक्तियों तीन-तीन वचनों वाले २१ (इक्कीस) प्रत्ययों का विधान करता है। इन प्रत्ययों को सुप् प्रत्यय कहा जाता है। ये प्रत्यय जिस शब्द के अन्त में जुड़ते हैं उसे 'सुबन्त' (सुप + अन्त) कहा जाता है। राम आदि शब्द इन प्रत्ययों के संयोग से सुबन्त शब्द कहलाते हैं। इन सुप्प्रत्ययों का प्रयोग केवल अजन्त शब्दों के साथ ही नहीं अपितु हलन्त शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होता हैं और वे हलन्त शब्द भी इन प्रत्ययों के संयोग से सुबन्त शब्द कहलाते हैं।

इन सात विभक्तियों के अतिरिक्त एक 'सम्बोधन' भी होता है।

ये सुप् प्रत्यय निम्न प्रकार हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
सम्बोधन	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

इन प्रत्ययों के आदि में सु है अतः इन प्रत्ययों को स्वादि (सु + आदि) प्रत्यय भी कहा जाता है। इनका अन्तिम प्रत्यय सुप् है, अतः आदि का 'सु' प्रत्यय और अन्तिम सुप् प्रत्यय के 'प्' तक सुप् प्रत्याहार बनता है और इन सभी को सुप् प्रत्यय कहा जाता है।

अधिकार सूत्राणि त्रीणि

४. ङ्याप्प्रातिपदिकात्।।४।१।१।।

वृत्ति—(स्वादिनां प्रत्यय संज्ञा सूत्रम्)

५. प्रत्ययः।।३।१।१।।

वृत्ति—(स्वादिनां परत्वविधि सूत्रम्)

६. परश्च।।३।१।२।।

वृत्ति—इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

अर्थ—ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे सु आदि प्रत्यय हो।

व्याख्या—उक्त तीनों सूत्र अधिकार सूत्र हैं। अधिकार सूत्र अपने में कुछ काम नहीं करते किन्तु दूसरे सूत्रों के उपकारक होते हैं प्रत्येक सूत्र में अधिकार बनकर जाते हैं

और उनका कार्य सिद्ध करते हैं। इन तीन सूत्रों का अधिकार लेकर ही **स्वौजसमौट०** यह विधिसूत्र सु और जस् आदि प्रत्ययों का विधान करता है।

एकवचनादिसंज्ञाविधायकं सूत्रम्।

७. सुपः— ।।१।४।१०३।।

वृत्ति—सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः।

अर्थ—सुप् प्रत्याहार के (सु से लेकर सुप् प्रत्यय तक) तीन-तीन प्रत्यय क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा वाले होते हैं।

अर्थात् प्रथमा आदि सातों विभक्तियों में से प्रत्येक के तीन-तीन वचन एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होते हैं। इन तीनों के क्रमशः सु, औ, जस् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—प्रथमा एकवचन का सु, द्विचवन का औ, बहुवचन का जस् प्रत्यय होता है। अन्य विभक्तियों के वचनों में भी इसी प्रकार से अन्य प्रत्यय होते हैं।

एकवचन-द्विवचनविधायकं नियम सूत्रम्

८. द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने।।१।४।२२।।

वृत्ति—द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः।

अर्थ—(द्वयेकयोः—द्वि + एकयोः, द्विवचनैकवचने-द्विवचन + एकवचने) अर्थात् द्वित्व संख्या और एकत्व संख्या की विवक्षा में क्रमशः द्विवचन और एक वचन होता है।

व्याख्या—संस्कृत व्याकरण में वचन का अर्थ है—संख्या और विवक्षा का अर्थ है—कहने की इच्छा। इस सूत्र के अनुसार यदि दो संख्या की विवक्षा हो तो द्विवचन और एक संख्या की विवक्षा हो तो एकवचन का प्रयोग किया जाय। यथा—दो राम है तो द्विवचन औ आयेगा। राम राम औ तथा एक राम है तो एकवचन सु आयेगा—राम सु। सभी शब्दों में प्रत्यय जोड़ते समय यही नियम रहेगा।

इन दो के अतिरिक्त प्रत्येक विभक्ति में बहुवचन का प्रयोग भी होता है। जिसका निर्देश आगे के सूत्र—"बहुषु बहुवचनम्" में किया जायेगा।

अवसानसंज्ञाविधायकं सूत्रम्

९. विरामोऽवसानम्।।१।४।११०।।

वृत्ति—वर्णानामभावोऽसवानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ। रामः।

अर्थ—(विरामः अवसानम्) वर्णों के अभाव की अवसान संज्ञा होती है।

व्याख्या—अवसान का अर्थ है वर्णों का आभाव हो जाना। अर्थात् जिस वर्ण के पश्चात् अन्य किसी वर्ण का उच्चारण न हो, उस अन्तिम वर्ण को अवसान कहा जाता है। यथा—राम र् यहाँ अन्तिम वर्ण र् के पश्चात् कोई वर्ण नहीं है, अतः यह अवसान संज्ञक है। यहाँ पर अवसान संज्ञा का एक प्रयोजन **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से अवसान संज्ञक र् का विसर्ग करना है।

१०. (वा०) अयोगवाहानामकारस्योपरि, शर्षु चेति वाच्यम्।

वृत्ति—यमानुस्वार-विसर्ग जिह्वामूलीयोपध्मानीया अयोगवाहाः।

तेनेह विसर्गस्य यत्वादनचि चेति द्वित्वपक्षे—रामः।।

व्याख्या—अयोगवाहों का (अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और यमों का) अक्षरसमाम्नाय में अकार के आगे और शर् प्रत्याहार में भी उपसंख्यान करना (पाठ समझना) चाहिए।

"रामः" इस रूप की सिद्धि की पूरी प्रक्रिया निम्नवत् है—

पहले बताया गया है कि शब्द व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न के रूप में दो प्रकार के होते हैं। व्युत्पन्न पक्ष में राम शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से होती है और अव्युत्पन्न पक्ष के राम शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' से होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने के पश्चात् **प्रत्ययः, परश्च और ङ्याप्प्रातिपदिकात्** इन तीन सूत्रों के अधिकार से **स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस् ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्** इस सूत्र से सुप् प्रत्यय होने का विधान किया गया। राम शब्द के बाद सु, औ, जस् आदि २१ (इक्कीस) प्रत्यय प्राप्त हुए और उन्हें सातों विभक्तियों में विभाजित किया गया किन्तु '**सुपः**' इस सूत्र से एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन की संज्ञा हुई। तत्पश्चात् '**प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**' सूत्र से प्रथमा विभक्ति का विधान हुआ। प्रथमा विभक्ति से सु, औ, जस् से तीन प्रत्यय हैं। तब 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एक संख्या की विवक्षा में एकवचन में सु प्रत्यय आया और राम + सु बना। उपदेशेऽजनुनासिक इत् से सु के उकार की इत्संज्ञा होकर '**तस्यलोप**' से उकार का लोप हो जाता है, केवल स् शेष बचता है, **राम + स्** इस स्थिति में **ससजुषो रुः** से सकार का रु आदेश होकर **राम + रु** हुआ। '**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**' सूत्र से रु के उकार की इत्संज्ञा होकर **तस्यलोपः** से उकार का लोप हो गया **राम + र्** बना। **विरामोऽवसानम्** सूत्र से र् की अवसान संज्ञा होकर रकार के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** सूत्र से विसर्ग होकर '**रामः**' रूप की सिद्धि हो जाती है।

एकशेषविधायकं सूत्रम्

११. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ।।१।२।६४।।

वृत्ति—एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

अर्थ—एक (यावत् अर्थात् सभी) विभक्ति के विषय में जितने शब्द एक समान दिखायी देते हैं, उनमें से एक ही शेष रहता है। (अन्य सभी समान शब्दों का लोप हो जाता है।)

व्याख्या—एक ही विभक्ति में समान रूप से उच्चरित होने वाले शब्दों में से केवल एक ही शेष रहता है, अन्य का लोप हो जाता है। जो शेष रहता है वही अन्य लोप हुए वर्णों का वाचक होता है—**यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी।**

समानो रूपः समरूपः तेषां समरूपाणाम् एक शेषः। यथा—एक ही विभक्ति में दो राम के लिए राम, राम इस प्रकार दो बार उच्चारण करना पड़ेगा, अनेक रामों के लि

राम, राम, राम, राम आदि अनेक रामों का उच्चारण करना पड़ेगा, इसलिए एक ही विभक्ति में आने वाले अनेक रामों का इस सूत्र से लोप होकर केवल एक राम ही शेष होगा। क्योंकि इनका प्रयोग एक ही प्रथमा विभक्ति में किया गया है। जो एक शेष है वो दूसरे का भी बोधक है। इसी प्रकार बहुवचन में भी प्रयोग करना चाहिए।

'रामौ' दो राम को बताने के लिए प्रथमा विभक्ति द्विवचन में औ प्रत्यय हुआ। **राम राम + औ** इस स्थिति में उक्त सूत्र से एक राम का लोप होकर एक राम शेष बचा **राम + औ** बना। मकारोत्तरवर्ती 'अ' और 'औ' के स्थान पर **'वृद्धिरेचि'** सूत्र से वृद्धिरूप एकादेश प्राप्त होता है।

पूर्वसवर्ण दीर्घविधायकं सूत्रम्

१२. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः।।६।१।१०२।।

वृत्ति—अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते।

अर्थ—(अकः प्रथमा द्वितीययोः अचि पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेशः स्यात्)।

अक् अर्थात् अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत (अ इ उ ऋ लृ) वर्णों में किसी भी एक वर्ण के आगे यदि प्रथमा या द्वितीया विभक्ति का कोई भी स्वर; जैसे—औ औट् अस् आदि होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश हो।

इति प्राप्ते—अर्थात् इस सूत्र से पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश की प्राप्ति होने पर, **'नादिचि'** यह अग्रिम सूत्र इसका निषेध करता है।

पूर्व सवर्ण दीर्घ निषेधं विधिसूत्रम्

१३. नादिचि।।६।१।१०४।।

वृत्ति—आदिचि न पूर्व सवर्ण दीर्घः। वृद्धिरेचि। रमौ।

अर्थ—(न आत् इचि) अवर्ण से इच् (इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) परे होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ न हो।

अर्थात् यह सूत्र 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' का निषेध सूत्र है। प्रस्तुत उदाहरण में **राम् अ + औ** होने पर मकारोत्तरवर्ती अवर्ण है और उसके परे औकार इच् प्रत्याहार का वर्ण है, अतः इस सूत्र से पूर्व सर्वण दीर्घ का निषेध होकर, **'वृद्धिरेचि'** सूत्र के वृद्धि एकादेश होता है और रामौ रूप सिद्ध होता है।

बहुवचनविधायकं नियमसूत्रम्

१४. बहुषु बहुवचनम्।।१।४।२१।।

वृत्ति—बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

अर्थ—बहुत्व संख्या की विवक्षा में बहुवचन होता है।

व्याख्या—बहु का अर्थ है दो से अधिक संख्या। अर्थात् तीन या तीन से अधिक संख्या बताने के लिए प्रातिपदिक संज्ञक शब्दों से बहुवचन होता है।

यथा—राम राम राम या उससे भी अधिक संख्या की, बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन का प्रत्यय जस् आयेगा। इसके बाद **'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ'** से अन्य राम का लोप होकर एक राम शेष रहेगा। 'राम + जस्' इस स्थिति में।

इत्संज्ञाविधायकं सूत्रम्

१५. चुटू।।१।३।७।।

वृत्ति—प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः।

अर्थ—(प्रत्यय-आद्यौ चुटू) अर्थात् प्रत्यय के आदि में होने वाले चवर्ग और टवर्ग, इत्संज्ञक हो।

व्याख्या—किसी भी प्रत्यय के आदि में होने वाले चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) और टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्) की इत्संज्ञा हो जाती है। **यथा**—राम + जस् में जकार चवर्ग का है, अतः इस सूत्र से जकार की इत्संज्ञा होगी और **तस्यलोपः** से जकार का लोप होकर **राम + अस्** बचता है।

विभक्ति संज्ञा विधायंक सूत्रम्

१६. विभक्तिश्च।।१।४।१०४।।

वृत्ति—सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

अर्थ—सुप् और तिङ् ये विभक्ति संज्ञक होते हैं।

व्याख्या—सु से लेकर सुप् तक २१ (इक्कीस) प्रत्यय सुप् कहे जाते है, इसी प्रकार तिप् के ति से लेकर महिङ् के ङ् तक १८ प्रत्यय तिङ् कहे जाते हैं। इन सुप् और तिङ् प्रत्ययों की इस सूत्र से विभक्ति संज्ञा की गई है। इस विभक्ति संज्ञा का फल अग्रिम सूत्र द्वारा इत्संज्ञानिषेध करना भी है।

इत्संज्ञानिषेध सूत्रम्

१७. नि विभक्तौ तुस्माः।।१।३।४।।

वृत्ति—विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेतः। इति सत्य नेत्त्वम्। रामाः।

अर्थ—(न विभक्तौ तु स् माः) विभक्ति में **स्थित तवर्ग**, सकार और मकार इत्संज्ञक नहीं होते हैं।

व्याख्या—यह 'हलन्त्यम्' का बाधक सूत्र है। तु—तवर्ग, सकार और मकार यदि विभक्ति में है तो इनकी इत्संज्ञा का निषेध होता है। **यथा**—जस्, शस्, भिस्, भ्यस्, ओस् में सकार की और अम्, भ्याम्, आम् में मकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा थी, किन्तु इस सूत्र से इत्संज्ञा का निषेध हो गया।

इत्संज्ञा न होने पर सकार का लोप नहीं हुआ, **राम + अस्** यही स्थिति रही।

रामाः—बहुत्व संख्या की विवक्षा में राम, राम, राम शब्द से '**बहुषु बहुवचनम्**' से बहुवचन में '**जस्**' प्रत्यय का विधान हुआ—**राम राम राम + जस्** बना। '**सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ**' से एक राम शेष और अन्य राम का लोप—**राम + जस्** बना। जस् के जकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया—**राम + अस्** बना। '**हलन्त्यम्**' से सकार की इत्संज्ञा प्राप्त थी किन्तु '**न विभक्तौ तुस्माः**' से इत्संज्ञा का निषेध हो गया। **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** सूत्र से पूर्व सवर्ण दीर्घ होकर **रामास्** बना। तत्पश्चात् सकार का रुत्वविसर्ग होकर **रामाः** रूप बनता है।

इस प्रकार प्रथमा विभक्ति के तीनों रूपों–रामः, रामौ, रामाः की सिद्धि होगी। अब प्रथमा के बाद सम्बोधन की सिद्धि की जायेगी सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति ही होती है।

सम्बुद्धि संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१८. एकवचनं सम्बुद्धि।।२।३।४६।।

वृत्ति–सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

अर्थ–सम्बोधन में प्रथमा का एकवचन सम्बुद्धि संज्ञक हो।

व्याख्या–किसी शब्द विशेष से दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करना सम्बोधन कहलाता है। यथा–हे राम! हे कृष्ण! आदि। सम्बोधन के एकवचन में जो प्रथमा विभक्ति का सु प्रत्यय आता है उसकी सम्बुद्धि संज्ञा होती है। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का विधान '**सम्बोधने च**' सूत्र से होता है।

अङ्गसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१९. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्।।१।४।१३।।

वृत्ति–यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादिशब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात्।

अर्थ–यस्मात्प्रत्यय–जो प्रत्यय जिस शब्द से विधान किया जाता है, वह शब्द आदि में है जिसके, ऐसा शब्द स्वरूप उस प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग संज्ञक हो जाता है।

व्याख्या–जो प्रत्यय जिस शब्द (प्रकृति) के परे (पश्चात्) होता है, वह शब्द (प्रकृति) अपने प्रत्यय के परे होने पर उक्त सूत्र से आदि में होने वाले वर्ण समुदाय सहित अङ्ग संज्ञक हो जाता है। **यथा**–सम्बोधन के एक वचन में राम शब्द से सु प्रत्यय हुआ। **राम + सु** इस स्थिति में सु प्रत्यय के परे होने पर राम शब्द की भी 'व्यपदेशीवद्भाव'[1] से तदाति मानकर अङ्गसंज्ञा हो जाती है।

सम्बुद्धि हल्लोपविधायकं विधि सूत्रम्

२०. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः।।६।१।६९।।

वृत्ति–एङन्तात् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद् हल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्। हे राम!

अर्थ–एङन्त अङ्ग और ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सम्बुद्धि का अवयव हल् है, उसका लोप हो।

व्याख्या–एङ् प्रत्याहार है और अङ्ग संज्ञा है। इस सूत्र का प्रयोग केवल सम्बोधन के एकवचन में ही होता है, क्योंकि केवल उसी की सम्बुद्धि संज्ञा होती है। अर्थात् एङन्त अङ्ग और ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सम्बुद्धि संज्ञक हल् वर्ण होता है उसका लोप हो जाता है। ह्रस्वान्त का उदाहरण **हे राम स्–हे राम,** एङन्त का उदाहरण–**हे हरेस्–हे हरे हेविष्णोस्–हे विष्णो, हे रमेस् हे रमे** इत्यादि। **यथा–**

---

१. विशिष्टः (मुख्यः) अपदेशः (व्यवहारः) व्यवदेशः, सः अस्यास्तीति व्यपदेशी–मुख्यव्यवहारवान्। व्यपदेशिना तुल्यां व्यवदेशिवत्–मुख्यव्यवहार वाले जैसा। यथा–सु प्रत्यय के परे प्रकृति राम किसी के आदि में नहीं है, अर्थात् तदादि नहीं है, फिर भी व्यापदेशीवद्भाव करके राम की अङ्गसंज्ञा की जाती है।

हे राम! राम शब्द से सम्बोधन के एकवचन में प्रथमा का एकवचन सु प्रत्यय आया। राम + सु इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **राम + स्** बना। राम की अङ्गसंज्ञा और स् की सम्बुद्धिसंज्ञा करके स् का एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः से लोप हो गया और 'हे' का पूर्वप्रयोग होकर **हे राम!** यह रूप सिद्ध होता है **हे रामौ! हे रामाः** सम्बोधन के द्विवचन में 'हे रामौ' और बहुवचन में 'हे रामाः'। रूप बनते हैं जिनकी सिद्धि प्रथमा विभक्ति के 'रामौ' और 'रामाः' की तरह ही होती है। केवल सम्बोधन के रूप में 'हे' का पूर्व प्रयोग होता है।

पूर्वरूपविधायकं विधि सूत्रम्

२१. अमिपूर्वः।।६।१।१०७।।

वृत्ति—अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। रामम्। रामौ।।

अर्थ—अक् (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के परे अम् (द्वितीया विभक्ति के एकवचन) का अच् होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है।

व्याख्या—अक् प्रत्याहार का कोई भी वर्ण पूर्व में हो और अम् का अकार पर में हो तो ही पूर्वरूप एकादेश होता है। **यथा—रामम्।**

रामम्—राम शब्द से **'कर्मणि द्वितीया'** सूत्र से द्वितीया विभक्ति एकवचन में अम् प्रत्यय हुआ, तब **राम + अम्** इस स्थिति में आदगुणः से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **'अकः सवर्णे दीर्घः'** से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसका भी बाध होकर **अमिपूर्वः** सूत्र से राम के मकारोत्तरवर्ती अकार अक् है और उसके परे अम् का अकार (अच्) है, अतः पूर्व और पर दोनों के स्थान पर **पूर्वरूप एकादेश** होकर **रामम्** रूप सिद्ध होता है।

रामौ। राम शब्द से द्वितीया विभक्ति द्विवचन में 'औट्' प्रत्यय आया **राम + औट्** इस स्थिति में **हलन्त्यम्** से टकार की इत्संज्ञा होकर **तस्यलोपः** से टकार का लोप होता है **राम राम + औ** इस स्थिति में एक शेष होकर **राम + औ** बना तत्पश्चात् वृद्धि होकर प्रथमा विभक्ति द्विवचन के समान **रामौ** रूप सिद्ध होता है।

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२२. लशक्वतद्धिते।।१।३।८।।

वृत्ति—तद्धितवर्जप्रत्याद्या लशकवर्गा इतः स्युः।

अर्थ—(ल श कु अतद्धिते) तद्धित प्रत्यय को छोड़कर अन्य प्रत्ययों के आदि में विद्यमान **लकार, शकार औ कवर्ग** (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) की इत्संज्ञा हो।

व्याख्या—इस सूत्र से तद्धित प्रत्यय से भिन्न लकार, शकार और कवर्ग के सभी वर्णों की इत्संज्ञा हो जाती है। **यथा**—द्वितीया विभक्ति बहुवचन में राम शब्द से शस् प्रत्यय हुआ। **राम + शस्** इस स्थिति में इस सूत्र से शस् के शकार की इत्संज्ञा होकर तस्यलोपः से शकार का लोप हो जाता है और **राम + अस्** शेष बचता है। **राम + अस्** में गुण और वृद्धि प्राप्त थी किन्तु दोनों का बाध होकर **प्रथमयोः पूर्व सवर्णः** सूत्र से पूर्वसवर्णदीर्घ आदेश होता है और **राम् + आस्** स्थिति बनती है।

नत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२३. तस्माच्छसो नः पुंसि।।६।१।१०३।।

वृत्ति—पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि।

अर्थ—(तस्मात् शसः नः पुंसि) पूर्व सवर्ण दीर्घ के परे शस् के सकार का नकार आदेश होता है, पुल्लिङ्ग में।

व्याख्या—उक्त सूत्र से पूर्वसवर्णदीर्घ होने के पश्चात् **रामास्** इस स्थिति में शस् प्रत्यय के सकार का नकार आदेश हो जाता है किन्तु यह पुल्लिङ्ग में ही होता है और **रामान्** बनता है।

णत्वविधायकं विधसूत्रम्

२४. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।।८।४।२।।

वृत्ति—अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यांपरस्य नस्य णाः समानपदे। इति प्राप्ते।

अर्थ—अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इन सबका अलग-अलग (व्यस्तैः) अथवा एक साथ (समस्तैः) अथवा यथासम्भव दो, तीन चार वर्ण मिलकर व्यवधान होने पर भी रेफ और षकार से परे नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है, समानपद में।

व्याख्या—उक्त सूत्र से अट् (अट् प्रत्याहार के वर्ण अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्) वर्णों का कवर्ग से क, ख, ग, घ, ङ वर्णों का, पवर्ग से प, फ, ब, भ, म वर्णों का आङ् से आ का तथा नुम् से नुम्स्थानिक अनुस्वार का बोध होता है। रकार और नकार अथवा षकार और नकार के मध्य उपर्युक्त वर्णों में से एक साथ कई वर्ण होने पर अथवा एक ही वर्ण होने पर नकार का णकार आदेश होता है, यदि ये समान पद में हो तो।

समान पद का अर्थ है एक ही अखण्ड पद। यथा 'रामान्' यह एक अखण्ड पद है, इनका पृथक-पृथक प्रयोग नहीं हो सकता और इस शब्द के रकार और नकार के मध्य अकार और पवर्ग के मकार और आकार का व्यवधान भी है, अतः उक्त सूत्र से नकार को णकार प्राप्त होता है किन्तु अग्रिम सूत्र से उसका निषेध हो जाता है।

णत्वनिषेधसूत्रम्

२५. पदान्तस्य।।८।४।३७।।

वृत्ति—नस्य णो न। रामान्।

अर्थ—पदान्त (पद के अन्त में) नकार को णकार प्राप्त नहीं होता है।

व्याख्या—यह निषेध सूत्र है। यद्यपि **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से नकार को णकार प्राप्त था, किन्तु 'रामान्' पद में नकार पद के अन्त में है, अतः इस सूत्र से णत्व का निषेध होकर द्वितीया विभक्ति बहुवचन में '**रामान्**' रूप बनता है।

इनात्स्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२६. टाङसिङसामिनात्स्याः।।७।१।१२।।

वृत्ति—अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः णत्वम्। रामेण।।

अर्थ—अदन्त अङ्ग से परे टा, ङसि, ङस् प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः इन, आत्, स्य ये आदेश होते हैं।

व्याख्या—यहाँ स्थानी भी तीन है और आदेश भी तीन है। अतः संख्या के आधार पर '**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**' सूत्र के नियमानुसार तृतीया विभक्ति के एकवचन में '**टा**' के स्थान पर '**इन**' पञ्चमी एक वचन के '**ङसि**' के स्थान पर '**आत्**' और षष्ठी एकवचन के '**ङस्**' के स्थान पर '**स्य**' आदेश हो जाता है।

रामेण—प्रातिपादिक संज्ञक **राम** शब्द से तृतीया विभक्ति एकवचन में **टा** प्रत्यय हुआ। **राम + टा** इस स्थिति में टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया और **राम + आ** बना। राम अदन्त अङ्ग है। अतः सूत्र से टा सम्बन्धी आकार के स्थान पर **इन** आदेश हुआ और **राम + इन** बना। '**आदगुणः**' सूत्र से गुण होकर **रामेन** हुआ **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार के स्थान पर णकार होकर **रामेण** रूप सिद्ध होता है।

यहाँ पर पदान्तस्य सूत्र से णत्व का निषेध नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ पर पद के अन्त में नकार नहीं अकार है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

२७. सुपि च।।७।३।१०२।।

वृत्ति—यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः रामाभ्याम्।

अर्थ—यञादि सुप् के परे होने पर अदन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो।

व्याख्या—अदन्त का अर्थ है ह्रस्व अकार जिसके अन्त में हो, जैसा कि राम शब्द में 'राम् अ' यह अदन्त अङ्ग है और इसके परे भ्याम् का भकार यञ् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है। अतः **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा के बल से अन्तिम वर्ण अकार के स्थान पर दीर्घ अर्थात् आकार आदेश होता है।

रामाभ्याम्—प्रातिपादिक संज्ञक राम शब्द से तृतीया द्विवचन में भ्याम् प्रत्यय हुआ, **राम + भ्याम्** इस स्थिति में '**सुपि च**' सूत्र से सुप् प्रत्यय भ्याम् का भकार आदि में जो यञ् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है, अतः अदन्त अङ्ग राम के अन्तिम वर्ण अकार का दीर्घ होकर **रामाभ्याम्** रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार चतुर्थी एवं पञ्चमी विभक्ति के द्विवचन में भी रामाभ्याम् ही बनेगा।

ऐसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२८. अतो भिस ऐस्।।७।१।९।।

वृत्ति—अतोऽङ्गात् परस्य भिस ऐस् स्यात्। 'अनेकाल्शित्सर्वस्य'। रामैः।।

अर्थ—अदन्त अङ्ग से परे भिस् को ऐस् आदेश हो।

व्याख्या—भिस् का सकार अन्तिम हलन्त वर्ण होने से सकार की इत्संज्ञा प्राप्त है, किन्तु उसका '**न विभक्तौ तुस्माः**' से निषेध हो जाता है। **अनेकाल् शित्सर्वस्य** इस सूत्र के अनुसार सम्पूर्ण 'भिस्' के स्थान पर ऐस् आदेश हो जाता है।

रामैः। प्रातिपदिक राम शब्द से तृतीया बहुवचन में 'भिस्' प्रत्यय आया। **राम + भिस्** इस स्थिति में '**अतो भिस ऐस्**' से सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होकर **राम**

+ **ऐस्** बना। फिर **वृद्धिरेचि** सूत्र से वृद्धि होकर **रामैस्** बना। **ससजुषो रुः** से सकार का रुत्व और रेफ का विसर्ग होकर **रामैः** रूप बनता है।

यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२९. ङेर्यः।।७।१।१३।।

वृत्ति—अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः।

अर्थ—अदन्त अर्थात् ह्रस्व अवर्णान्त अङ्ग से परे '**ङे**' के स्थान पर '**य**' आदेश होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से चतुर्थी एक वचन में **राम** + **ङे** आने पर 'ङे' प्रत्यय के स्थान पर '**य**' आदेश होकर **राम** + **य** बनता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अदन्त अङ्ग को सुपि च सूत्र से दीर्घ होना चाहिए था, किन्तु अदन्त अङ्ग राम से परे 'य' सुप् नहीं है, 'ङे' सुप् था, पर 'ङे' के स्थान पर 'य' आदेश हो गया अतः 'सुपि च' से दीर्घ कैसे हो सकता है ? इस शंका के समाधानार्थ अग्रिम सूत्र है।

स्थानिवद्भावविधायकं अतिदेशसूत्रम्

३०. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ।।१।१।५६।।

वृत्ति—आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ।

इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः। रामाय। रामाभ्याम्।

अर्थ—आदेश स्थानी के समान होता है, किन्तु यदि स्थानी सम्बन्धी अल् को आश्रय लेकर कोई कार्य करना हो तो स्थानिवद्भाव नहीं होगा।

व्याख्या—इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को 'स्थानिवद्भाव' कहते हैं। जिसका अर्थ है **स्थानी के भाव जैसा**। जैसा भाव हम स्थानी में रखते थे, वैसा ही भाव आदेश में भी रखना चाहिए, क्योंकि आदेश स्थानी के स्थान पर स्थानी को हटाकर होता है। स्थानिवद्भाव से स्थानी का स्थानित्व आदेश में भी आ जाता है। यथा—**राम** + **ङे** में 'ङे' के स्थान पर जो '**य**' आदेश हुआ, इस आदेश में 'ङे' इस स्थानी का जो सुप्त्व गुण था वह गुण आ जायेगा। 'य' को सुप् मानकर **सुपि च** सूत्र से **राम** + **य** में दीर्घ होकर **रामाय** रूप बन जाता है।

रामाय—प्रातिपादिक 'राम' शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय आया। **राम** + **ङे** इस स्थिति में ङ् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है और **राम** + **ए** बनता है। फिर '**ङेर्यः**' सूत्र से 'ङे' सम्बन्धी एकार के स्थान पर यकार आदेश होकर राम + य बना। उक्त सूत्र से 'य' के स्थानिवद्भाव होने से सुप् मानकर अदन्त अङ्ग राम के अन्त्य वर्ण अकार के स्थान पर दीर्घादेश हुआ और **रामाय** रूप बना।

चतुर्थी द्विवचन में भी तृतीया द्विवचन के समान **रामाभ्याम्** ही बनेगा।

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३१. बहुवचने झल्येत्।।७।३।१०३।।

वृत्ति—झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः। रामेभ्यः। सुपि किम् ? पचध्वम्।

अर्थ—झलादि (झल् प्रत्याहार का वर्ण जिसके आदि में हो) बहुवचन सुप् प्रत्यय के परे रहते, अदन्त अङ्ग को एकार आदेश हो।

व्याख्या—इस सूत्र से यदि आदि में ह्रस्व अकार हो, उसके परे बहुवचन का सुप् प्रत्यय हो और उसका आदि वर्ण झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता हो, तो आदि में विद्यमान ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश हो जाता है।

रामेभ्य—प्रातिपदिक 'राम' शब्द से चतुर्थी बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय हुआ। **राम + भ्यस्** इस स्थिति में **बहुवचने झल्येत्** सूत्र से राम के अकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **रामेभ्यस्** बना। **अन्त** सकार का रुत्व और विसर्ग होकर **रामेभ्यः** रूप बनता है।

चर्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

३२. वाऽवसाने।।८।४।५६।।

वृत्ति—अवसाने झलां चरो वा। रामात्, रामाद्। रामाभ्याम्। रामेभ्यः। रामस्य।

अर्थ—अवसान परे होने पर झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों का विकल्प से चर् प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण आदेश हो जाता है।

व्याख्या—(विरामः अवसानम्) अवसान अर्थात् वर्णों का अभाव होने पर झलों के स्थान पर विकल्प से चर् आदेश होता है। झल् प्रत्याहार में वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण तथा श्, ष्, स्, ह् ये वर्ण आते हैं।

रामात्, रामाद्। प्रातिपदिक **'राम'** शब्द से पञ्चमी एकवचन की विवक्षा में **'ङसि'** प्रत्यय आया। अनुबन्ध लोप होकर **राम + अस्** बना। **टाङ्सिङसामिनात्स्याः** से अस् के स्थान पर आत् आदेश होकर **राम + आत्** बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्ण दीर्घ होकर **रामात्** बना। **झलां जशोऽन्ते** से तकार का जशत्व होकर दकार हुआ और **रामाद्** बन गया।

रामाद् इस स्थिति में दकार के आगे वर्णों के अभाव में दकार अवसान में है, और वह झल् वर्णो के अन्तर्गत भी है अतः **वाऽवसाने** सूत्र से दकार का चर्त्व होकर तकार हो जाता है और **रामात्** रूप बनता है। यह आदेश विकल्प से होता है। यदि चर्त्व नहीं होगा तो दकार ही रहेगा और **रामाद्** ही बनेगा। इस प्रकार पञ्चमी एक बचन में दो रूप बनते हैं—**रामात्, रामाद्**।

पञ्चमी के द्विवचन और बहुवचन में **रामाभ्याम्** और **रामेभ्यः** चतुर्थी के द्विवचन और बहुवचन के समान ही बनेंगे। इस प्रकार पञ्चमी विभक्ति के **रामात्/रामाद्, रामाभ्याम्, रामेभ्यः** रूप होंगे।

रामस्य। 'राम' शब्द से षष्ठी विभक्ति एक वचन की विवक्षा में **ङस्** प्रत्यय आया। **राम + ङस्** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **राम + अस्** बना। **टाङसिङसामिनात्स्याः** सूत्र से अस् के स्थान पर स्य आदेश होकर **'रामस्य'** बना।

एत्वविधायकं विधि सूत्रम्

३३. ओसि च।।७।३।१०४।।

वृत्ति—अतोऽङ्गस्यैकारः। रामयोः।

अर्थ—अदन्त अङ्ग (ह्रस्व अकारान्त) से परे ओस् प्रत्यय होने पर अकार के स्थान पर एकार आदेश होता है।

व्याख्या—अदन्त अङ्ग राम है उसके अन्त्य वर्ण अकार के स्थान पर षष्ठी द्विवचन का ओस् प्रत्यय परे होने से एकार आदेश हो जाता है।

रामयोः। 'राम' शब्द से षष्ठी द्विवचन में 'ओस्' प्रत्यय आया। **राम + ओस्** इस स्थिति में **नविभक्तौतुस्माः** सूत्र से लोप का निषेध होकर **'ओसि च'** सूत्र से राम के मकार के अकार का एकार आदेश हुआ और **रामे + ओस्** बना। **रामे + ओस्** में **एचोऽयवायवः सूत्र** से एकार का **अय्** आदेश होकर **राम् + अय् + ओस्** बना। **रामयोस्** में सकार का रुत्व विसर्ग होकर **रामयोः** रूप बना।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

३४. ह्रस्वनद्यापो नुट्।।७।१।५४।।

वृत्ति—ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः।

अर्थ—ह्रस्वान्त अङ्ग, नद्यन्त अङ्ग और आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् का आगम हो।

व्याख्या—ह्रस्वान्त (ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में हो) तथा नद्यन्त (नदीसंज्ञक वर्ण जिसके अन्त में हो) और आबन्त (आप् अर्थात् टाप्, चाप्, डाप् प्रत्यय जिसके अन्त में हो ऐसे शब्दों से परे षष्ठी विभक्ति के बहुवचन वाले 'आम्' को 'नुट्' का आगमन हो जाता है।

इस 'नुट्' आगम में **'हलन्त्यम्'** से ट् की इत्संज्ञा और **'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'** से उकार की इत्संज्ञा होकर **'तस्यलोपः'** से लोप हो जाता है, केवल न् शेष रहता है। टकार की इत्संज्ञा होने से यह आगम टित् हो जाता है, अतः **'अद्यान्तौ टकितोः'** सूत्र के नियम से 'नुट' का आगम 'आम्' प्रत्यय के आदि में होता है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३५. नामि।।६।४।३।।

वृत्ति—नामि परे अजन्ताङ्गस्य दीर्घः। रामाणाम्। रामे। रामयोः। सुपि एत्वे कृते।

अर्थ—अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो नाम् से परे होने पर।

व्याख्या—सह सूत्र नाम् के परे होने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ करता है। अर्थात् न् + आम् = नाम्, तस्मिन् नामि। नुट् का नकार और षष्ठी बहुवचन का आम् प्रत्यय मिलकर नाम् हो जाता है और नाम् के परे रहते यह सूत्र अजन्त राम के मकार के अकार का दीर्घ करता है।

रामाणाम्—'राम' शब्द से षष्ठी बहुवचन में 'आम्' प्रत्यय हुआ। **'राम + आम्'** इस स्थिति में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'आम्' के आदि में नुट् का आगम हुआ और **राम + नुट् + आम्** बना। अनुबन्ध लोप होकर **राम + न् + आम्** बना। **राम + नाम्** में **'नामि'** सूत्र

से राम के अन्त्य वर्ण अकार का दीर्घ होकर '**रामानाम्**' बना। **नाम्** के नकार का **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से णकार होकर **रामाणाम्** रूप सिद्ध होता है।

रामे—'राम' शब्द से **सप्तम्यधिकरणे** च से सप्तमी विभक्ति एक वचन में ङि प्रत्यय आया। **राम + ङि** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **राम + इ** बना। **आदगुणः** से मकार के अकार और इकार के स्थान पर गुण होकर **रामे** रूप सिद्ध होता है।

रामयोः—षष्ठी के द्विवचन के समान ही सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में भी **रामयोः** रूप बनता है, क्योंकि षष्ठी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय है और सप्तमी के द्विवचन में भी ओस् प्रत्यय है अतः दोनों के समान रूप बनेंगे।

अधिकार सूत्रम्

३६. अपदान्तस्यमूर्धन्यः।।८।३।५५।।

वृत्ति—आपादपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

अर्थ और व्याख्या—इस सूत्र से पाणिनि अष्टाध्यायी के अष्टम् अध्याय के तृतीय पाद की समाप्ति पर्यन्त अपदान्त का अधिकार है।

३७. इणकोः।।८।३।५७।।

वृत्ति—इत्यधिकृत्य।

अर्थ और व्याख्या—यह भी अधिकार सूत्र है।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्।

३८. आदेशप्रत्ययोः।।८।३।५९।।

वृत्ति—इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः।

ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः। रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः।

अर्थ—इण् प्रत्याहार और कवर्ग से परे अपदान्त आदेश रूप सकार या प्रत्ययावयव जो सकार है उसके स्थान पर मूर्धन्य (षकार) आदेश हो।

व्याख्या—इण् प्रत्याहार (इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, ओ, ह् य् व् र् ल्) कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) से परे अपदान्त (जो पद का अन्त न हो) प्रत्ययावयव (जो प्रत्यय का अवयव हो) जो सकार हो, ऐसे सकार का इस सूत्र से मूर्धन्य वर्ण आदेश होता है। अर्थात् **रामेसु** इस स्थिति में इण् एकार के बाद सकार है, वह पदान्त नहीं है, क्योंकि पद के अन्त में उकार है तथा सुप् प्रत्यय का अवयव भी है, अतः सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है। क्योंकि सकार और षकार दोनों का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत है।

रामेषु। 'राम' शब्द से सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय आया। '**राम + सुप्**' **हलन्त्यम्** सूत्र से प् की इत्संज्ञा होकर **तस्यलोपः** से प् का लोप हो गया—**राम + सु** बना। **राम + सु** इस स्थिति में **बहुवचने झल्येत्** सूत्र से राम के मकार के अकार का एत्व होकर **रामे + सु** बना। '**आदेशप्रत्यययोः**' सूत्र से सकार का षकार आदेश होकर '**रामेषु**' रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार सप्तमी विभक्ति के **रामे, रामयोः, रामेषु** ये तीनों रूप सिद्ध होते हैं।

'राम' शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	कारक	चिह्न
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः	कर्ता	ने
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्	कर्म	को
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	करण	से, द्वारा
चतर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	सम्प्रदान	के लिए, को
पञ्चमी	रामात्/रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	अपादान	से (अलग होना)
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	सम्बन्ध	का, की, के, रा, री, रे
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु	अधिकरण	में, पे, पर
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः	सम्बोधन	हे, भो, अरे आदि

राम शब्द अकारान्त पुल्लिङ्ग है, तो सर्वादिगण पठित शब्दों को छोड़कर शेष सभी ह्रस्व अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द के रूप राम के समान ही बनेंगे। **यथा**—कृष्ण, वानर, अध्यापक, केशव, विप्र, कोविद, अर्चक, मधुप, खग, गज आदि सभी रूपों की सिद्धि राम के समान ही होगी।

सर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२९. सर्वादीनि सर्वनामानि।।१।१।२७।।

वृत्ति—सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम।

गणसूत्रम्—पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्।

गणसूत्रम्—स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।

गणसूत्रम्—अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः।

त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्।

अर्थ—जो शब्द सर्व आदि गण में पढ़े गये हैं, वे सर्वनाम संज्ञक होते हैं।

व्याख्या—सर्वादिगण में सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम्, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत, त्व, नेम, सम, सिम इन शब्दों के साथ अन्य गणसूत्रों के अनुसार कुछ विशेष शब्द भी आते हैं; यथा—

पूर्वपरा०—पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर शब्द की सर्वादि में गणना होकर, इनकी भी सर्वनाम संज्ञा होती है।

स्वमज्ञाति०—ज्ञाति तथा धन से अन्य जो आत्मा, आत्मीय अर्थ है, इनमें 'स्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञा हो।

अर्थात् 'स्व' शब्द के चार अर्थ है—आत्मा, आत्मीय (अपना) ज्ञाति (बन्धुबान्धव) और धन। आत्मा और आत्मीय अर्थों में तो 'स्व' की सर्वनाम संज्ञा होगी, शेष दो अर्थों में नहीं।

अन्तरं बहि०—बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ में अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा हो।

अर्थात् बहिर्योग (बाहर का) तथा उपसंव्यान (अधोवस्त्र) इन दो अर्थों में तो अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा होगी, अन्य अर्थों में नहीं।

त्यदिति—त्यद् (वह) तद् (वह) यद् (जो) एतद् (यह) अदस् (वह) एक, द्वि (दो) युष्मद् (तुम) अस्मद् (मैं) भवतु (आप) किम् (कौन) ये सर्वादिगण के अन्तर्गत त्यदादिगण है। इन सबकी सर्वनाम संज्ञा होती है।

इस प्रकार सर्वादिगण में कुल ३५ शब्द ही आते हैं और इन सबकी सर्वनाम संज्ञा होती है।

सर्वः, सर्वौ। 'सर्व' शब्द के प्रथमा में राम शब्द के समान ही सर्वः बनता है। सर्व शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया। **सर्व** + **सु** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर, रुत्व विसर्ग हो जाता है और सर्वः रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार **रामौ** के समान प्रथमा के द्विवचन में 'सर्व' शब्द से 'औ' प्रत्यय आया। **सर्व** + **औ** इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ की प्राप्ति और उसका निषेध होकर, **वृद्धिरेचि से** वृद्धि होकर **'सर्वौ'** रूप बन जाता है।

शीविधायकं विधिसूत्रम्

४०. जसः शी।।७।१।१७।।

वृत्ति—अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। सर्वे।

अर्थ—सर्वनामसंज्ञक अदन्त शब्द से परे जस् प्रत्यय के स्थान पर शी आदेश हो।

व्याख्या—इस सूत्र से अकारान्त से परे जस् प्रत्यय के स्थान पर 'शी' आदेश होता है। 'शी' आदेश अनेकाल् है क्योंकि इसमें 'श्' और 'ई' दो वर्ण है। 'शी' आदेश 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर होता है। इसलिए 'शी' में प्रत्ययत्व लाने के लिए 'स्थानिवद्भाव' करके **लशक्वतद्धिते** से शकार की इत्संज्ञा और 'तस्यलोपः' से लोप हो जाता है, केवल 'ई' शेष बचता है।

सर्वे—'सर्व' शब्द से प्रथमा के बहुवचन में **जस्** प्रत्यय आया। **सर्व** + **जस्** इस स्थिति में **'चुटू'** से जकार की इत्संज्ञा और **तस्यलोपः** से लोप होकर **सर्व** + **अस्** बना। **'जसः शी'** सूत्र से जस् सम्बन्धी अस् के स्थान पर शी आदेश हुआ और **सर्व** + **शी** बना। **अनुबन्ध लोप** होकर **सर्व** + **ई** बना। **आदगुणः** से गुण होकर (अ + ई = ए) **'सर्वे'** रूप बना।

इस प्रकार प्रथमा के एकवचन में **सर्वः**, द्विवचन में **सर्वौ** और बहुवचन में **'सर्वे'** रूप बनते हैं।

द्वितीया में **सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्** तृतीया में **सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वैः** रूप बनते हैं, अतः इनकी सिद्धि राम शब्द के समान ही होगी।

स्मैविधायकं विधिसूत्रम्

४१. सर्वनाम्नः स्मै ।।७।१।१४।।

वृत्ति—अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै। सर्वस्मै।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम से परे ङे प्रत्यय के स्थान पर स्मै आदेश होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से सर्वनामसंज्ञक ह्रस्व अकारान्त के परे चतुर्थी एक वचन में 'ङे' प्रत्यय के स्थानपर '**स्मै**' आदेश होता है।

सर्वस्मै—'सर्व' शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय आया। **लशक्वतद्धिते** से ङ् की इत्यसंज्ञा और **तस्यलोपः** से ङ् का लोप होकर सर्व + ए बना। '**सर्वनाम्नः स्मै**' से एकार को स्मै आदेश होकर **सर्व** + **स्मै** = सर्वस्मै रूप सिद्ध होता है।

चतुर्थी द्विवचन और बहुवचन में राम शब्द के ही समान **सर्वाभ्याम्** और **सर्वेभ्यः** रूप बनते।

स्मात्स्मिन्नादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

४२. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ।।७।१।१५।।

वृत्ति—अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

अर्थ—अदन्त सर्वनामसंज्ञक वर्ण से परे '**ङसि**' और '**ङि**' के स्थान पर क्रमशः **स्मात्** और **स्मिन्** आदेश होता है।

व्याख्या—सर्वनामसंज्ञक ह्रस्व अकारान्त शब्द से परे पञ्चमी के एक वचन में 'ङसि' के स्थान पर 'स्मात्' आदेश और सप्तमी के एक वचन 'ङि' के स्थान पर 'स्मिन्' आदेश होता है।

सर्वस्मात्, सर्वस्माद्। सर्वशब्द से पञ्चमी एकवचन में 'ङसि' प्रत्यय आया। **सर्व** + **ङसि** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **सर्व** + **अस्** बना। '**ङसिङ्योः स्मात्सिनौ से**' अस् के स्थान पर 'स्मात्' होकर 'सर्व + स्मात्' बना। **झलां जशोऽन्ते** से तकार का दकार होकर **सर्व** + **स्माद्** बना। **वाऽवसाने** से विकल्प से चर्त्व होकर **सर्वस्मात्** बना। चर्त्व के अभाव पक्ष में **सर्वस्माद्** ही बना रहा।

पञ्चमी द्विवचन में **सर्वाभ्याम्** और बहुवचन में **सर्वेभ्यः** रूप राम शब्द के समान ही बनेंगे।

षष्ठी विभक्ति एकवचन और द्विवचन के **सर्वस्य** और **सर्वयोः** भी राम शब्द के समान ही बनेंगे।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्।

४३. आमि सर्वनाम्नः सुट्।।७।१।५२।।

वृत्ति—अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः। एत्वषत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः। उभ शब्दों नित्यं द्विवचनान्तः। उभौ २। उभाभ्याम् ३। उभयोः २। तस्येह पाठोऽकजर्थः।

उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति।

डतरडतमौ प्रत्ययौ, प्रत्यय ग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः।

नेम इत्यर्धे।

समः सर्वपर्यायस्तुल्यपर्यायस्तु न, यथासंख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात्।

अर्थ—अवर्णान्त से परे और सर्वनाम से विहित जो आम् उसको सुट् का आगमन हो।

व्याख्या—यह सूत्र 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' का बाधक है। अन्यत्र 'नुट्' होता है किन्तु सर्वनामसंज्ञक शब्दों से सुट् होता है। सुट् में उकार और टकार इत्संज्ञक है, अतः इनका लोप हो जाता है। सुडागम टित् होने के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ के नियम से आम् प्रत्यय के आदि में बैठकर आम् प्रत्यय का अवयव बनता है।

सर्वेषाम्—सर्व शब्द से षष्ठी के बहुवचन में 'आम्' प्रत्यय हुआ। **सर्व + आम्** इस स्थिति में '**आमि सर्वनाम्नः सुट्**' सूत्र से 'आम्' को 'सुट्' का आगम होकर **सर्व + सुट् + आम्** बना। अनुबन्ध लोप होकर **सर्व + स् + आम्** बना। **सर्व + साम्** में '**बहुवचने झल्येत्** से वकारोत्तरवर्ती अकार को एत्व होकर सर्वे + साम् बना। एत्व हो जाने से अकारान्त सर्व शब्द में इण् प्रत्याहार आ गया इसलिए **आदेश प्रत्यययोः** सूत्र से इण् के परे प्रत्यय के अवयव साम् के सकार का षत्व होकर **सर्वेषाम्** रूप बनता है।

सर्वस्मिन्—'सर्व' शब्द से सप्तमी के एकवचन में 'ङि' प्रत्यय आया। **सर्व + ङि** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **सर्व + इ** बना। **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** सूत्र से 'ङि' प्रत्यय के इकार को स्मिन् आदेश होकर '**सर्वस्मिन्**' रूप बनता है।

सर्वयोः, सर्वेषु तो रामयोः और रामेषु के समान ही बनते हैं। **हे सर्व! हे सर्वौ!** हे राम! हे रामौ! के समान ही बनेंगे। **हे सर्वे!** जैसे सर्व शब्द का प्रथमा एकवचन बना, वैसे ही बनाकर हे का पूर्व प्रयोग होकर हे सर्वे! बनता है।

इस प्रकार अकारान्त 'सर्व' शब्द की सिद्धि हो जाती है। ये सर्वनाम संज्ञक शब्द विशेषण होते है। विशेष्य जिस लिङ्ग और वचन का होता है विशेषण भी उसी लिङ्ग और वचन का होता है। सर्वादिगण के शब्द तीनों लिङ्गों में होते हैं और विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार ही विशेषण के लिङ्ग का प्रयोग किया जाता है।

सर्व-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्/सर्वस्माद्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

सर्वादिगण में दूसरा शब्द है विश्व (सम्पूर्ण) उसके रूप भी सर्व शब्द के समान ही होंगे।

सर्व-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वः	विश्वौ	विश्वे
द्वितीया	विश्वम्	विश्वौ	विश्वान्
तृतीया	विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः
चतुर्थी	विश्वस्मै	विश्वाभ्याम्	विश्वेभ्यः
पञ्चमी	विश्वस्मात्-द्	विश्वाभ्याम्	विश्वेभ्यः
षष्ठी	विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्
सप्तमी	विश्वस्मिन्	विश्वयोः	विश्वेषु
सम्बोधन	हे विश्व	हे विश्वौ	हे विश्वे

सर्वादिगण में सर्व और विश्व के तृतीया और चतुर्थ शब्द हैं—**उभ** और **उभय**।

उभ शब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। उभ शब्द केवल द्विवचन में होता है। इसमें एकवचन और बहुवचन नहीं होते। उभ के रूप निम्नवत् होते हैं—

उभ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	....	उभौ	....
द्वितीया	....	उभौ	....
तृतीया	....	उभाभ्याम्	....
चतुर्थी	....	उभाभ्याम्	....
पञ्चमी	....	उभाभ्याम्	....
षष्ठी	....	उभयोः	....
सप्तमी	....	उभयोः	....

उभ शब्द द्विवचनान्त है और **तस्येह पाठोऽकजर्थः** अकच् प्रत्यय के लिए इसको सर्वादिगण में पाठ किया गया है। **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः'** यह सूत्र अव्यय संज्ञक-शब्द और सर्वनामसंज्ञक-शब्दों से अकच् प्रत्यय करता है और उभ शब्द से अकच् प्रत्यय होकर 'उभकौ' रूप बनता है।

उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। उभय—शब्द का द्विवचन नहीं होता। इसका प्रयोग केवल एकवचन और बहुवचन में ही होता है। जिसके शब्द रूप निम्नवत् है—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उभयः	....	उभये
द्वितीया	उभयम्	....	उभयान्
तृतीया	उभयेन	....	उभयैः
चतुर्थी	उभयस्मै	....	उभयेभ्यः
पञ्चमी	उभयस्मात्-द्	....	उभयेभ्यः
षष्ठी	उभयस्य	....	उभयेषाम्
सप्तमी	उभयस्मिन्	....	उभयेषु
सम्बोधन	हे उभय	....	हे उभये

डतर-डतमौ प्रत्ययौ, प्रत्यय ग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्या। सर्वादिगण में पाँचवाँ और छठवाँ प्रत्यय **डतर** और **डतम** है। **'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्'** इस परिभाषा के अनुसार "प्रत्यय के ग्रहण होने पर प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है।" तद्धित प्रकरण में **'किं यन्तदोर्निर्धारिणे द्वयोरेकस्य डतरच्'** सूत्र से **डतरच्** प्रत्यय का, और " **वा बहूनां जाति परिप्रश्ने डतमच्**" सूत्र से डतमच् प्रत्यय का विधान हुआ है। **किम्, यद्, तद्** एक इन चार शब्दों से डतर-डतम प्रत्ययान्त रूप देखे जाते हैं। यथा—'किम्' शब्द से **कतर-कतम**, 'यद्' शब्द से यतर-यतम और 'तद्' शब्द से **ततर-ततम**। इनके रूप भी सर्व के समान ही बनते हैं। कतर शबद के रूप निम्नवत् हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कतरः	कतरौ	कतरे
द्वितीया	कतरम्	कतरौ	कतरान्
तृतीया	कतरेण	कतराभ्याम्	कतरैः
चतुर्थी	कतरस्मै	कतराभ्याम्	कतरेभ्यः
पञ्चमी	कतरस्मात्—द्	कतराभ्याम्	कतरेभ्यः
षष्ठी	कतरस्य	कतरयोः	कतरेषाम्
सप्तमी	कतरस्मिन्	कतरयोः	कतरेषु
सम्बोधन	हे कतर	हे कतरौ	हे कतरे

सर्वादिगण में पठित **अन्य (दूसरा) अन्यतर (दो में से एक) इतर (अन्य) त्व (अथवा) नेम (आधा) सम (सब) सिम (सब)** इनके सबके रूप सर्व के समान ही बनते हैं। त्वत् शब्द का प्रयोग केवल वेद में मिलता है। उसके रूप भी कुछ भिन्न होते हैं। त्व के रूप भी सर्व के समान ही बनते हैं।

नेम इति—अर्ध (आधा) वाचक 'नेम' शब्द की ही सर्वनाम संज्ञा होती है, अन्य अर्थ में प्रयुक्त हुए नेम शब्द की नहीं।

सम इति—सर्वादिगण में पठित 'सम' शब्द का अर्थ 'सब' है जो सर्व शब्द का पर्यायवाचक है। 'सम' शब्द तुल्य का भी पर्याय वाचक है, किन्तु तुल्य पर्याय वाचक

सम शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है, जिसे महर्षि पाणिनि का सूत्र **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** प्रमाणित करता है। यदि इस सूत्र में प्रयुक्त तुल्यवाचक समानाम् शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती तो 'समानाम्' के स्थान पर 'समेषाम्' होगा। इससे स्पष्ट होता है कि सर्वपर्याय वाचक 'सम' शब्द की ही सर्वनाम संज्ञा होती है, तुल्यपर्याय वाचक 'सम' शब्द की नहीं। 'सर्व' पर्याय 'सम' शब्द के रूप 'सर्व' के समान ही बनेंगे।

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

४४. पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ।।१।१।३४।।

वृत्ति—एषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणपाठात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे, पूर्वाः। असंज्ञायां किम् ? उत्तराः कुरवः।

स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था।

व्यवसथायां किम् ? दक्षिणा गाथकः। कुशलता इत्यर्थः।

अर्थ—संज्ञाभिन्न व्यवस्था अर्थ में पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर इन सात शब्दों की उक्त गणसूत्र में सर्वत्र **नित्य** पाई जाने वाली सर्वनाम संज्ञा, जस् के परे होने पर विकल्प से होती है।

व्याख्या—संज्ञाभिन्न व्यवस्था अर्थ में **पूर्वपरावर०** आदि शब्द भी सर्वादिगण में माने जाते हैं, जिनकी '**सर्वादीनि सर्वनामानि**' सूत्र से सर्वनाम संज्ञा होती है किन्तु 'जस्' प्रत्यय के परे होने पर उक्त सूत्र से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। **यथा—पूर्वे, पूर्वाः**—यहाँ पूर्व शब्द से प्रथमा एकवचन और द्विवचन में 'राम' के समान 'पूर्वः' और 'पूर्वौ' रूप बनते हैं, किन्तु प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय होने पर विकल्प से जब सर्वनाम संज्ञा हो जाती है तब '**जसः शी**' सूत्र से '**जस्**' को '**शी**' हो जाता है और '**सर्वे**' के समान 'पूर्वे' रूप बनता है। सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में 'जस्' का 'शी' आदेश न होकर सवर्ण दीर्घ हो जाता है और रामाः के समान पूर्वाः रूप बनता है। इस प्रकार प्रथमा बहुवचन में **पूर्वे** और **पूर्वाः** ये दो रूप बनते हैं। अन्य छः शब्दों के भी जस् प्रत्यय के परे होने पर इसी प्रकार दो-दो रूप बनते हैं।

असंज्ञायां किम् ? उत्तराः कुरवः। 'असंज्ञायाम्' के अभाव में इस सूत्र का प्रयोग संज्ञा और असंज्ञा दोनों में होने लगेगा और अनिष्ट रूप बनने लगेगा। अतः इस सूत्र से पूर्वादिसात शब्दों की सर्वनाम संज्ञा का निषेध होकर जस् का शी आदेश होकर उत्तरे नहीं हुआ क्योंकि उत्तर शब्द उत्तर कुरुदेश की संज्ञा है और उत्तराः कुरवः रूप बना।

स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था—स्वस्य पूर्वादिशब्दस्य अभिधेयः **दिग्देशकालादि रूपः अर्थः तेन अपेक्ष्यमाणः अवधेर्नियमः यत्रेति**। यह व्यवस्था शब्द का लक्षण है। अर्थात्—जहाँ पर पूर्वादि शब्दों के अपने अर्थों से अवधि के नियम की अपेक्षा हो वहाँ पर प्रयुक्त इन पूर्वादि शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है।

यथा—अयोध्या पूर्वा। कुतः ? वृन्दावनात्। अयोध्या पूर्व दिशा में है इस वा
में अवधि की अपेक्षा होती है कि कहाँ से पूर्व है ? जिसका उत्तर है—वृन्दावन से। अ
पूर्व शब्द यहाँ पर व्यवस्था अर्थ में है।

व्यवस्थायां किम् दक्षिण गाथकाः—यहाँ पर दक्षिण शब्द व्यवस्था अर्थ में
होकर कुशल, चतुर अर्थ में है। अतः दक्षिण शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी। सर्वना
संज्ञा न होने पर जस् का शी आदेश नहीं होगा और दक्षिणे ऐसा अनिष्ट रूप नहीं बने
इसलिए 'व्यवस्थायाम्' लिखा गया है।

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

४५. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।।१।१।३५।।

**ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता सञ्ज्ञा जसि वा। स्वे, स्वाः। आत्मीयाः
आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा।**

अर्थ—ज्ञाति (बन्धु बान्धव) और धन अर्थ से भिन्न जो आत्मा और आत्मीय अर्थ
उनमें स्व शब्द की गणसूत्र से जो नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी, वह जस् प्रत्यय के प
रहते विकल्प से हो।

व्याख्या—'स्व' शब्द के चार अर्थ है—आत्मा (स्वयं) आत्मीय (अपना) ज्ञाति
(बन्धु बान्धव) और धन। इनमें आत्मा और आत्मीय अर्थ में तो सर्वनाम संज्ञा होती है औ
ज्ञाति तथा बान्धव अर्थ में नहीं होती है।

स्वे, स्वाः—उक्त सूत्र से सर्वनाम संज्ञा का जस् के परे होने पर विकल्प से विधान
किया गया है। सर्वनाम संज्ञा होने पर 'जस्' का 'शी' आदेश होकर 'सर्वे' के समान
'स्वे' रूप बनेगा और अभाव पक्ष में 'रामाः' के समान रूप बनेगा। स्वे, स्वाः का अर्थ
है—स्वयं या अपने। ज्ञाति और धन वाचक 'स्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने पर
केवल 'स्वाः' रूप ही बनेगा।

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञा विधायकं संज्ञासूत्रम्

४६. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः।।१।१।३६।।

**वृत्ति—बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। अन्तरे, अन्तरा
वा गृहाः, बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे, अन्तराः वा शाटकाः परिधानीया इत्यर्थः।**

अर्थ—बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द की गणसूत्र से नित्य प्राप्त
सर्वनाम संज्ञा जस् के परे होने पर विकल्प से हो।

व्याख्या—गणसूत्र में पठित बाह्य और परिधानीय अर्थ में 'अन्तर' शब्द की सर्वत्र
नित्य रूप से सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी किन्तु 'जस्' के परे होने पर यह संज्ञा यहाँ पर
विकल्प से होती है। **यथा—अन्तरे, अन्तराः** सर्वनाम संज्ञा होने के पक्ष में 'जस्' का शी
आदेश होकर 'अन्तरे' और अभाव पक्ष में अन्तराः रूप बनता है। जिसका अर्थ है—बाहर
स्थित घर और परिधानीय वस्त्र साड़ी आदि।

इस प्रकार पूर्वोक्त तीन सूत्रों से **पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर** इन नौ शब्दों की जस् प्रत्यय के परे होने पर सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है और प्रथमा बहुवचन में दो-दो रूप बनते हैं। इन नौ शब्दों से पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में अग्रिम सूत्र से दो-दो रूप बनते हैं।

वैकल्पिक स्मात्स्मिन्नादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४७. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा।।७।१।१६।।

वृत्ति—एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः।

पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। **एवं परादीनाम्**। शेषं **सर्ववत्। एक शब्दः संख्यायां नित्यैकवचनान्तः**। संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। अतिक्रान्तः **सर्वमति सर्वस्तस्मै—अतिसर्वाय**। तदन्तस्यापीयं सञ्ज्ञा, **द्वन्द्वे चेति ज्ञापकात्। अन्तरं बहिर्योगेति गणसूत्रे—अपुरीति वक्तव्यम्। अन्तरायां पुरि।**

अर्थ—पूर्व आदि नौ शब्दों से परे 'ङसि' और 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं।

व्याख्या—पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर ये पूर्व आदि नौ शब्द हैं। पूर्वोक्त तीन गणसूत्रों से इन सभी की सर्वनाम संज्ञा होती है, किन्तु उक्त सूत्र से इन नौ शब्दों से परे 'ङसि' और 'ङि' प्रत्यय होने पर 'ङसि' के स्थान पर 'स्मात्' और ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं। **यथा**—

पूर्वस्मात्—'पूर्व' शब्द से पञ्चमी एकवचन में ङसि प्रत्यय आया। **पूर्व + ङसि** इस स्थिति में अदन्त सर्वनाम संज्ञक पूर्व शब्द के परे ङसि प्रत्यय को **'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ'** से नित्य स्मात् आदेश प्राप्त था किन्तु उक्त सूत्र से विकल्प का विधान होकर एक पक्ष में स्मात् आदेश होकर 'पूर्वस्मात्' रूप बनता है और अभाव पक्ष में 'आत्' आदेश होकर रामवत् पूर्वात् रूप बनता है।

पूर्वस्मिन्। पूर्व शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय हुआ **पूर्व + ङि** इस स्थिति में ङि के स्थान पर नित्य स्मिन् आदेश प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र से बाध होकर विकल्प का विधान होता है। और **पूर्व + ङि इस** स्थिति में एक पक्ष में ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश होकर **पूर्वस्मिन्** रूप बनता है और दूसरे पक्ष में **पूर्व + ङि** इस स्थिति में 'ङि' का अनुबन्ध लोप होकर **पूर्व + इ** शेष बचता है तत्पश्चात् गुण होकर रामवत् पूर्वे रूप बनता है।

इसी प्रकार पर, अवर आदि आठ शब्दों के परे ङसि और ङि प्रत्यय होने पर विकल्प का विधान होने से **परस्मात् परात्, परस्मिन् और परे** आदि दो-दो रूप बनते हैं।

जस्, ङसि और ङि प्रत्ययों के अतिरिक्त शेष शब्दों के रूप सर्व शब्द के समान ही बनेंगे। उनमें विकल्प का विधान नहीं किया गया है।

पूर्व—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे/पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्/पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्/पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
सम्बोधन	हे पूर्व !	हे पूर्वौ !	हे पूर्वे ! हे पूर्वा

इस प्रकार सर्वादिगण में **पठित त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, भवतु-भवत्, किम्** ये दसों हलन्त हैं। अतः इनके रूप तो हलन्त प्रकरण में मिलेंगे। द्वि शब्द के रूप तो रामवत् ही बनेंगे। क्योंकि द्वि शब्द में केवल द्विवचन ही बनता है। **यथा—**

द्वि—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	× × ×	द्वौ	× × ×
द्वितीया	× × ×	द्वौ	× × ×
तृतीया	× × ×	द्वाभ्याम्	× × ×
चतुर्थी	× × ×	द्वाभ्याम्	× × ×
पञ्चमी	× × ×	द्वाभ्याम्	× × ×
षष्ठी	× × ×	द्वयोः	× × ×
सप्तमी	× × ×	द्वयोः	× × ×

एक शब्द का केवल एकवचन मात्र होता है। यथा—

एक—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एकः	× × ×	× × ×
द्वितीया	एकम्	× × ×	× × ×
तृतीया	एकेन	× × ×	× × ×
चतुर्थी	एकस्मै	× × ×	× × ×
पञ्चमी	एकस्मात्	× × ×	× × ×
षष्ठी	एकस्य	× × ×	× × ×
सप्तमी	एकस्मिन्	× × ×	× × ×

अपुरीति—पूः शब्द यदि विशेष्य हो तो 'अन्तर' शब्द की गणसूत्र से सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

४८. तृतीयासमासे।।१।१।३०।।

वृत्ति—अत्र सर्वनामता न। मास पूर्वाय। तृतीयासमासार्थवाक्येऽपि न—मासेन पूर्वाय।

अर्थ और व्याख्या—तृतीया समास में और तृतीया समासार्थ वाक्य में सर्वादि की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

४९. द्वन्द्वे च।।१।१।३१।।

वृत्ति—द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा न। वर्णाश्रमेतराणाम्।

अर्थ और व्याख्या—द्वन्द्व समास में सर्वादि की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

५०. विभाषा जसि।।१।१।३२।।

वृत्ति—जसाधारां शीभावाख्यं यत्कार्यं तत्र कर्तव्ये द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा वा स्यात्। वर्णाश्रमेतरे। वर्णाश्रमेतराः।

अर्थ और व्याख्या—जस् स्थानिक शी भाव कर्त्तव्य हो, तो द्वन्द्व में सर्वादि की सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

जसि वैकल्पिक सर्वनाम संज्ञा विधायकं संज्ञा सूत्रम्।

५१. प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च।।१।१।३३।।

वृत्ति—एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः। प्रथमे, प्रथमाः।

तयः प्रत्ययः। द्वितये, द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे, नेमाः। शेषं सर्ववत्।

अर्थ—प्रथम, चरम, तयप् प्रत्ययान्त शब्द, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम शब्दों की 'जस्' के परे होने पर सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

व्याख्या—प्रथमा (पहला) चरम (अन्तिम) तयप् प्रत्ययान्त शब्द (द्वितय–दो का समुदाय आदि) अल्प (थोड़ा) अर्ध (आधा) कतिपय (संख्या वाचक कुछ) और नेम (आधा) इन सभी शब्दों की जस् प्रत्यय के परे होने पर सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

प्रथमे, प्रथमाः—'प्रथम' शब्द से प्रथम बहुवचन में जस् प्रत्यय आया। **प्रथम + जस्** इस स्थिति में सर्वनाम संज्ञा होने पर **जसः शी से शी** आदेश होकर **सर्वे** की तरह **प्रथमे चरमे** आदि रूप बनता है तथा सर्वनाम संज्ञा न होने के पक्ष में **रामाः** के समान **प्रथमाः, चरमाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

तयः प्रत्ययः—'तय अर्थात् तयप्' यह प्रत्यय है। **प्रत्ययग्रहणे-तदन्तग्रहणम्। द्वि**—शब्द से तयप् प्रत्यय होकर द्वितय बना। द्वितय शब्द से 'जस्' प्रत्यय में 'द्वितये, द्वितयाः' ये दो रूप बनते हैं तथा शेष विभक्तियों में रामशब्द के समान ही बनते हैं।

नेमे, नेमाः—नेम शब्द का सर्वादिगण में पाठ है, अतः इस शब्द की 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र से सर्वत्र सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी, किन्तु इस सूत्र से जस् प्रत्यय के परे

सर्वनाम् संज्ञा विकल्प से होती है। सर्वनाम संज्ञा होने के पक्ष में 'जस्' का 'शी' आदेश होकर '**नेमे**' रूप बनता है और सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में रामवत् **नेमाः** रूप बनता है। 'नेम' शब्द सर्वादि गण में पठित होने के कारण इसके शेष रूप सर्व शब्द के समान बनेंगे।

(वार्तिकम्) तीयस्य ङित्सु वा।

वृत्ति—द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जरः।

अर्थ—यह वार्तिक है। तीय—प्रत्ययान्त शब्दों से ङित् विभक्ति के परे होने पर सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

व्याख्या—तीय-प्रत्ययान्त दो शब्द हैं। इन तीय-शब्दों से सर्वनाम संज्ञा प्राप्त नहीं थी, यह सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। ङित् प्रत्यान्त **ङे, ङसि, ङस् और ङि** ये चार होते है इनमें ङकार की इत्संज्ञा हो जाती है। इन ङित् प्रत्यय के परे होने पर तीय-प्रत्ययान्त शब्दों की इस वार्तिक सूत्र से सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। सर्वनाम संज्ञा होने पर ङे के स्थान पर **स्मै**, 'ङसि' के स्थान पर **स्मात्** और **ङि** के स्थान पर **स्मिन् आदेश** होकर 'द्वि' और 'त्रि' शब्दों से ङित् विभक्ति में **द्वितीयस्मै—द्वितीयाय, तृतीयस्मै—तृतीयाय, द्वितीयस्मात्—द्वितीयात्, तृतीयस्मै तृतीयात्, द्वितीयस्मिन्-द्वितीये, तृतीयस्मिन्**-तृतीये रूप बनते हैं तथा शेष विभक्तियों में रामवत् ही रूप बनते हैं।

यद्यपि **ङस्** प्रत्यय परे सर्वनाम संज्ञा का अजन्त पुल्लिङ्ग में कोई फल नहीं है, तथापि अजन्त स्त्रीलिङ्ग में इसका फल है।

निर्जरः—(देवता) अकरान्त पुल्लिङ्ग निर्जर शब्द का प्रथमा एकवचन में 'राम' के समान **निर्जरः** रूप बनता है।

वैकल्पिक जरसादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

५२. जराया जरसन्यतरस्याम्।।७।२।१०१।।

वृत्ति—अजादौ विभक्तौ।

परिभाषा—पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च।

परिभाषा—निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति।

परिभाषा—एकदेशविकृतमनन्यवत्।

इति जर-शब्दस्य जरस। पक्षे हलादौ च रामवत्।

अर्थ—अजादि विभक्ति के परे रहते 'जरा' के स्थान पर विकल्प से जरस् आदेश होता है।

व्याख्या—'जरा' अर्थात् (बुढ़ापा) अजादि विभक्ति (अर्थात् जिसके आदि में अच् वर्ण हो अथवा जिसके आदि में यदि हल् वर्ण भी हो तो अनुबन्ध लोप होकर केवल अच् ही शेष रहता है उन्हें अजादि कहते हैं ये प्रत्यय निम्नलिखित हैं; **यथा**—

औ, जस् अम्, औट्, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि ये अजादि विभक्ति हैं, इनके अतिरिक्त शेष विभक्तियाँ हलादि हैं। अतएव इस सूत्र से जरा को

जरास् आदेश विकल्प से केवल अजादि विभक्तियों के परे ही होता है। हलादि विभक्तियों के परे यह आदेश नहीं होता है।

निर्जरसौ–'निर्जर' शब्द से प्रथमा द्विवचन में '**औ**' प्रत्यय हुआ। **निर्जर + औ** यहाँ पर औ अजादि प्रत्यय है, अतः जरा के स्थान पर उक्त सूत्र से जरस् आदेश होना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि जरा शब्द तो है नहीं, अपितु निर्जर है। फिर कैसे जरा के स्थान पर जरस् आदेश हो ? इस समस्या के समाधानार्थ यह परिभाषा है–

पदाङ्गाधिकारे०–इस परिभाषा के अनुसार–"पद और अङ्ग के अधिकार में जिसके स्थान पर जिस आदेश का विधान किया जाये वह आदेश उसके तथा तदन्त अर्थात् जिसके अन्त में हो, उस समुदाय के स्थान पर भी होता है।"

इस परिभाषा से जरस् आदेश उसके स्थान पर भी हो सकता है, जिसके अन्त में जरा हो अतएव निर्जर के स्थान पर जरस् आदेश होगा क्योंकि **अनेकाल् शित्सर्वस्य** इस परिभाषा सूत्र के अनुसार अनेकाल आदेश सम्पूर्ण **निर्जर** के स्थान पर प्राप्त होता है। अतः सर्वादेश के निवारणार्थ अग्रिम परिभाषा की जाती है।

निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति–इस परिभाषा के अनुसार "आदेश जिसके स्थान पर निर्दिष्ट किये गये हो, केवल उसी के स्थान पर ही होते हैं।" अर्थात् षष्ठी प्रकृतिजन्य प्राथमिकोपस्थिति विषय को निर्दिश्यमान कहा जाता है। इसलिए निर्जर शब्द में जरा के स्थान पर ही जरस् आदेश होगा, सम्पूर्ण निर्जर को नहीं।

इस प्रकार इन दोनों परिभाषाओं से यह तो सिद्ध हो जाता है कि निर्जर के स्थान पर आदेश न होकर जरा के स्थान पर ही जरस् आदेश हो किन्तु निर्जर में जर शब्द है जरा नहीं, अतः जर के स्थान पर जरस् आदेश कैसे होगा ? इस समस्या के समाधानार्थ अग्रिम परिभाषा है–

एकदेशविकृत०–इस परिभाषा का तात्पर्य है कि–"किसी एक भाग अथवा अवयव के विकृत हो जाने पर वह अन्य के समान नहीं होता अपितु वह वही माना जाता है।" यथा–"छिन्ने पुच्छे शुनि न चाश्वो न तु गर्दभः" अर्थात् यदैव कुत्ते की पूँछ कट जाने पर वह कुत्ता ही रहता है, न तो वह घोड़ा और न ही वह गदहा बन जाता है। तदैव जरा में ह्रस्व होकर जरा शब्द जरा ही कहलाता है। इस प्रकार से इस परिभाषा के बल से निर्जर के जर के स्थान पर जरस् आदेश होकर **निर्जरसौ** रूप बनता है। **जरस्** आदेश विकल्प से होता है अतः **जरस्** आदेश के अभाव में **रामौ** के समान **निर्जरौ** रूप भी बनता है।

प्रथमा बहुवचन में **जस्** प्रत्यय आने पर अनुबन्ध लोप होकर **अस्** शेष बचता है। **निजर्र + अस्** इस स्थिति में अजादि विभक्ति के परे रहते **जरस्** आदेश होकर **निर्जरसः** और **जरस्** आदेश के अभाव में **रामाः** के समान **निर्जराः** रूप बनता है।

इस प्रकार विकल्प से **जरस्** आदेश होने से उक्त सभी तेरह अजादि विभक्तियों के दो-दो रूप बनते हैं। शेष आठ हलादि विभक्तियों के केवल एक राम शब्द के समान रूप बनते हैं।

निर्जर-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ-निर्जरौ	निर्जरसः-निर्जराः
द्वितीया	निर्जरसम्-निर्जरम्	निर्जरसौ-निर्जरौ	निर्जरान्
तृतीया	निर्जरसा-निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
चतुर्थी	निर्जरसे-निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
पञ्चमी	निर्जरसः-निर्जरात्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरसः-निर्जरस्य	निर्जरसोः-निर्जरयोः	निर्जरसाम्-निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि-निर्जरे	निर्जरसोः-निर्जरयोः	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर !	हे निर्जरसौ ! हे निर्जरौ !	हे ! निर्जरसः-हे ! निर्जराः

वैकल्पिकं पदादयादेशविधायकंसूत्रम्

५३. पद्दन्नोमास—हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु—

।।६।१।६३।।

वृत्ति—पाद-दन्त-नासिका-मास-हृदय-निशा-असृज्-यूष-दोष-यकृत-शकृत-उदक-आस्य एषां पदादय आदेशाः स्युः शसादौ वा। यत्तु, 'आसनशब्दस्यासन्नादेश' इति काशिकायामुक्तं, तत्प्रमादिकमेव। पादः। पादौ। पादाः। पादम्। पादौ। पादान्। पदा-पादेन इत्यादि। विश्वपाः।

अर्थ एवं व्याख्या—पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज, यूष, दोष, यकृत, शकृत, उदक, आस्य इन सभी के स्थान पर शस् प्रत्यय के परे होने पर विकल्प से क्रमशः पद्, दत्, नस् मास्, हृद्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन्, आसन् आदेश होता है।

विश्वपाः—विश्वं पाति-रक्षतीति विश्वपाः (विश्व की रक्षा करने वाला) विश्व-पर्वूक पा रक्षणे धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' सूत्र से विच् प्रत्यय और उसका सर्वापहार लोप होकर विश्वपा शब्द बनता है। यह शब्द अकरान्त धातु से बना है, स्त्रीलिङ्ग आबन्त नहीं है।

विश्वपा शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया। **विश्वपा + सु** इस स्थिति में उकार की इत्संज्ञा और लोप, सकार का रुत्व और विसर्ग होकर विश्वपाः सिद्ध होता है।

पूर्वसवर्ण दीर्घ निषेधसूत्रम्

५४. दीर्घाज्जसि च।।६।१।१०५।।

वृत्ति—दीर्घाज्जसि इचि च परे पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात्।

वृद्धि—विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ।

अर्थ—दीर्घ से जस् और इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है।

व्याख्या—दीर्घ स्वर के पश्चात् जस् प्रत्यय हो अथवा इच् (इच् प्रत्याहार का कोई वर्ण—इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ) हो तो पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है।

यथा—**विश्वपा + औ** इस स्थिति में दीर्घ स्वर आकार के परे इच् प्रत्याहार का वर्ण औकार है। अतः इस सूत्र से **पूर्व सवर्ण दीर्घ** का निषेध होकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि आदेश हुआ और **विश्वपौ** रूप बना।

विश्वपाः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय लाने पर **विश्वपा + जस्** हुआ। अनुबन्ध लोप होकर **विश्वपा + अस्** हुआ। इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्ण दीर्घ एवं सकार का रुत्व विसर्ग होकर **विश्वपाः** रूप बनता है।

हे विश्वपाः—सम्बोधन के एक वचन में प्रथमा एकवचन के समान विश्वपाः रूप बनाकर **हे** का पूर्वप्रयोग करे **हे विश्वपाः** रूप बनता है। **विश्वपाः** शब्द न तो ह्रस्वान्त है और न ही एङन्त है। इसलिए **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** सूत्र से सकार का लोप नहीं होता है।

सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन और बहुवचन के समान ही **हे विश्वपौ** और **हे विश्वपाः** रूप बनते हैं।

विश्वपाम्—विश्वपा शब्द से द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय लाने पर **विश्वपा + अम्** हुआ। इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ को बाधकर **अमिपूर्वः** से पूर्वरूप होकर **विश्वपाम्** रूप बनता है।

विश्वपौ—प्रथमा द्विवचन के समान ही द्वितीया द्विवचन में भी **विश्वपौ** रूप बनता है।

सर्वनामस्थानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५५. सुडनपुंसकस्य।।१।१।४३।।

वृत्ति—स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य।

अर्थ—सु आदि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है किन्तु नपुंसकलिङ्ग में नहीं होती है।

व्याख्या—सुट् 'सु' प्रत्यय से लेकर **औट्** के टकार तक **सुट्** प्रत्याहार माना जाता है। इसमें सु-औ-जस्-अम्-औट् ये पाँचों वचनों को सुट् प्रत्याहार माना गया है। उक्त सूत्र से इनकी **सर्वनामस्थानसंज्ञा** होती है किन्तु यह संज्ञा नपुंसकलिङ्ग गें नहीं होती है। यह संज्ञा केवल पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में ही होती है।

यहाँ तो इस सूत्र का केवल उल्लेख मात्र है, क्योंकि यहाँ पर इसका कोई उपयोग नहीं है। इसका उपयोग आगे किया जायेगा।

पदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

५६. स्वादिष्वसर्वनामस्थाने।।१।४।१७।।

वृत्ति—कप्-प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्।

अर्थ—सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों को छोड़कर सु से लेकर कप् प्रत्यय पर्यन्त प्रत्ययों के परे रहते पूर्व का शब्द पदसंज्ञक होता है।

व्याख्या—सु से लेकर कप् प्रत्यय तक चतुर्थ और पञ्चम अध्याय के सम्पूर्ण प्रत्यय इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

स्वौजसमौट्।।४।१।१।।

सूत्र से सु आदि प्रत्यय होते हैं, और **उरः प्रभृतिभ्यः कप्।।५।४।१५१।।**

सूत्र से कप् प्रत्यय होता है। सु से लेकर कप् प्रत्यय के सभी प्रत्यय इसमें संगृ हो जाते हैं।

इस सूत्र से जिसकी पदसंज्ञा होती है उसे केवल व्याकरण में ही पद के द्वारा ग्र किया जाता है, लोक भाषा में नहीं।

भ—संज्ञाविधायकं संज्ञा सूत्रम्।

५७. यचि भम्।।१।४।१८।।

वृत्ति—यादिष्वजादिषु च कप्—प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पू भसंज्ञं स्यात्।

अर्थ—सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्ययों से भिन्न सु से लेकर कप् प्रत्यय पर्य यकारादि और अजादि के परे होने पर पूर्व में विद्यमान प्रकृति भसंज्ञक होती है।

व्याख्या—यह सूत्र सर्वनाम स्थान संज्ञक प्रत्ययों को छोड़कर सु से लेकर क प्रत्यय तक यकारादि (य जिसके आदि में हो) और अजादि (अच् अर्थात् स्वर जिस आदि में हो) ऐसे अजादि स्वादि प्रत्ययों एवं यकारादि स्वादि प्रत्ययों के परे रहने पर पू की **भसंज्ञा** करता है। यथा—**विश्वपा + जस्** इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होक **विश्वपा + अस्** शेष बचता है। यहाँ पर 'अस्' अजादि परे है अतः इस सूत्र से 'अस्' पूर्व **विश्वपा** की भसंज्ञा होती है।

एकसंज्ञाधिकारार्थं नियम सूत्रम्।

५८. आ कडारादेका संज्ञा।।१।४।१।।

वृत्ति—इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागैकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया। य पराऽनवकाशा च।

अर्थ—प्रथमाध्याय के चतुर्थपाद से लेकर '**कडाराःकर्मधारये**' [२।२।३८ इस सूत्र से पूर्व तक एक ही संज्ञा हो।

व्याख्या—इस सूत्र के द्वारा अष्टाध्यायी के क्रमानुसार **[१।४।१]** से लेक **[२।२।३८]** तक के सूत्रों के मध्य यदि कहीं एक ही को एक साथ दो संज्ञायें प्राप्त होती हैं तो वहाँ एक को एक ही संज्ञा होगी। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** और **यचि** भम् ये दोनों सूत्र इसके अन्तर्गत आ जाते हैं, अतः यहाँ पर किसी शब्द की या तो पदसंज्ञा होगी और या भसंज्ञा। अब प्रश्न यह उठता है कि दोनों संज्ञायें एक साथ होने पर एक संज्ञाधि ाकार में कौन सी संज्ञा की जाए ? **तो या पराऽनवकाशा च**। अष्टाध्यायी के क्रम से जो पर हो और जो संज्ञासूत्र परस्पर में अनवकाश हो अर्थात् कम स्थानों पर प्रयुक्त हो वह संज्ञा होगी। इस प्रकार **भसंज्ञा** निरवकाश है और 'यचिभम्' पर सूत्र भी है क्योंकि यत्र-यत्र भसंज्ञा होती है। तत्र-तत्र पद संज्ञा भी प्राप्त होती है। इसलिए भसंज्ञा निरवकाश हो जाती है। पद संज्ञा तो अजादि यकारादि सभी प्रकार के प्रत्ययों के परे हो सकती है किन्तु **भसंज्ञा** तो केवल यकारादि और अजादि प्रत्ययों के परे ही हो सकती है। अतः दोनों

संज्ञाओं की प्राप्ति में निरवकाश होने से **भसंज्ञा** ही बलवती हो जाती है। जहाँ भसंज्ञा की प्राप्ति नहीं हो सकती, वहाँ पर पदसंज्ञा हो जाती है। इस प्रकार शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम, ङि के परे होने पर **भसंज्ञा** और शेष भ्याम्, भिस्, भ्यस् और सुप् के परे पूर्व की पदसंज्ञा हो जाती है।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्।

५९. आतो धातोः।।६।४।१४०।।

वृत्ति—अकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्पाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातोः किम् ? हाहान्।

अर्थ—अकारान्त जो धातु, वह धातु अन्त में हो ऐसा जो भसंज्ञक अङ्ग, उसका लोप हो।

व्याख्या—यह सूत्र आकारान्त अर्थात् आ जिसके अन्त में हो ऐसी धातु का जो भसंज्ञक अङ्ग है उसका लोप करता है। यथा—**विश्वपा** + **शस्** इस स्थिति में आकारान्त धातु पा है और यह विश्वपा शब्द के अन्त में है **शस्** प्रत्यय है अतः **यचिभम्** से भसंज्ञा होकर उक्त सूत्र से भसंज्ञक अङ्ग विश्वपा के अन्तिम अल् अर्थात् आकार का लोप हो जाता है और **विश्वप्** + **अस्** शेष बचता है फिर रुत्व विसर्ग होकर **विश्वपः** रूप सिद्ध होता है।

तृतीया एकवचन में टा प्रत्यय आने पर **विश्वपा** + **टा** बनता है। अनुबन्धन लोप होकर **विश्वपा** + **आ** शेष बचता है। इस स्थिति में भसंज्ञक अङ्ग के अन्तिम आकार का लोप होकर **विश्वपा** रूप सिद्ध होता है।

तृतीया द्विवचन में 'भ्याम्' प्रत्यय आने पर **विश्वपा** + **भ्याम्** इस स्थिति में कोई विशेष कार्य न होकर केवल वर्ण सम्मेलन करके **विश्वपाभ्याम्** रूप बनता है।

इस प्रकार अजादि विभक्तियों में आकार का लोप होकर और हलादि विभक्तियों में कोई विशेष न होकर इस शब्द के सभी रूप इस प्रकार बनेंगे।

विश्वपा—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे! विश्वपाः!	हे! विश्वपौ!	हे! विश्वपाः

एवमिति—इसी प्रकार शङ्खध्मा (शंख बजाता है) आदि आकारान्त शब्दों के रूप बनेंगे।

धातोः किम्—"आतो धातोः" इस सूत्र से केवल धातु के आकार का ही लोप है अधातु के आकार का नहीं। यथा—'**हाहा**' शब्द में '**हा**' धातु नहीं है अपितु गन्धर्व वाचक **हाहा** शब्द में धातुत्व का अभाव होने पर द्वितीया बहुवचन में आकार का लोप न होकर **हाहा + अस्** में पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर सकार का नकार हो जाता है और **हाहान्** रूप बनता है।

हाहा—टा तृतीया विभक्ति ए० व० में सवर्ण दीर्घ होकर हाहा रूप बनता है।

हाहै—चतुर्थी एकवचन में ङे में वृद्धिरूप एकादेश होकर हाहै रूप बनता है।

हाहाः—पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति में ङसि और ङस् के परे होने पर सवर्ण दीर्घ होकर हाहाः रूप बनते हैं।

हाहौः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'ओस्' परे होने पर वृद्धि और रुत्व विसर्ग होकर हाहौः रूप बनते है।

हाहाम्—षष्ठी के बहुवचन में आम् परे होने पर सवर्ण दीर्घ होकर हाहाम् रूप बनता है।

हाहे—सप्तमी एक वचन में ङि परे होने पर गुणादेश होकर 'हाहे' रूप बनता है।

हाहा—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हाहाः	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहान्
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहौः	हाहाम्
सप्तमी	हाहे	हाहौः	हाहासु
सम्बोधन	हे हाहाः!	हे हाहौः!	हे हाहाः!

ह्रस्व इकारान्त शब्द

इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द है हरि (विष्णु)।

हरिः—'हरि' शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप होकर **हरि + स्** शेष बचा सकार का रुत्वविसर्ग होकर **हरिः** रूप बनता है।

हरी—'हरि' शब्द से प्रथमा द्विवचन में **औ** प्रत्यय आया। **हरि + औ** में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से पूर्वसवर्णदीर्घ अर्थात् इकार और औकार के स्थान पर ईकार आदेश होकर **हर् + ई** हुआ, फिर वर्णसम्मेलन करके **हरी** रूप बना।

गुणविधायकं विधि सूत्रम्।

६०. जसि च।।७।३।१०९।।

वृत्ति—ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः। हरयः।

अर्थ—ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो, जस् प्रत्यय के परे होने पर।

व्याख्या—उक्त सूत्र से जस् प्रत्यय के परे यदि ह्रस्वान्त अङ्ग है तो उस ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण प्राप्त होता है। यथा—

हरयः—इकारान्त पुल्लिङ्ग 'हरि' शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय आया। **हरि + जस्** का अनुबन्ध लोप होकर **हरि + अस्** शेष बचा। इस स्थिति में हरि का इकार ह्रस्वान्त अङ्ग है और उसके परे 'जस्' प्रत्यय का अस् है। अतः इकार को गुणरूप एकार आदेश होता है और **हरे + अस्** बनता है। **हरे + अस्** में **एचोऽयवायावः** से एकार के स्थान पर अय् आदेश **हर् + अय् + अस्** बना। सकार का रुत्व विसर्ग होकर **हरयः** रूप सिद्ध होता है।

गुणविधायकंविधिसूत्रम्।

६१. ह्रस्वस्य गुणः।।७।३।१०८।।

वृत्ति—सम्बुद्धौ। हे हरे। हरिम्। हरी। हरीन्।

अर्थ—ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो, सम्बुद्धि के परे रहते।

व्याख्या—यह सूत्र केवल सम्बुद्धि संज्ञक हल् वर्ण सकार के परे होने पर ही ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण आदेश करता है। यथा—

हे हरे! 'हरि' शब्द से सम्बोधन के एकवचन में 'सु' प्रत्यय आया **हरि + सु** इस स्थिति में अनुबन्धन लोप होकर स् शेष बचा। सम्बुद्धि संज्ञा होकर इस सूत्र से इकार के स्थान पर गुणादेश हुआ। **हरे + स्** इस स्थिति में ह्रस्वान्त हरि के एङन्त हो जाने पर **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** सूत्र से सम्बुद्धिसंज्ञक स् का लोप, **हे** का पूर्व प्रयोग होकर **हे हरे!** रूप बनता है।

सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन और बहुवचन के समान ही रूप बनाकर हे का पूर्व प्रयोग करके **हे हरी! हे हरयः!** रूप बनते हैं।

हरिम्—द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय आने पर हरि + अम् इस स्थिति में अमि पूर्वः से पूर्वरूप होकर **हरिम्** रूप बनता है।

हरी—द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही **हरी** रूप बनता है।

हरीन्—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर हरि + अस् हुआ। **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** सूत्र से पूर्व सवर्ण दीर्घ होकर **हरीस्** बना। **तस्माच्छसो: नः पुंसि** से सकार का नकार आदेश होकर **हरीन्** रूप बनता है।

घिसंज्ञा विधायकं संज्ञा सूत्रम्।

६२. शेषो घ्यसखि।।१।४।७।।

वृत्ति—शेष इति स्पष्टार्थम् अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम्।

अर्थ—अनदीसंज्ञौ अर्थात् नदी संज्ञक से भिन्न जो ह्रस्व इकार और उकार, तद
जो सखिभिन्न अङ्ग, वह घि संज्ञक हो।

व्याख्या—इस सूत्र से जिनकी नदी संज्ञा नहीं हुई हो ऐसे ह्रस्व इकार और उका
की घि संज्ञा होती है किन्तु ह्रस्व इकारान्त होते हुए भी सखि शब्द की घिसंज्ञा नहीं हो
है। घि संज्ञा का प्रयोजन ना आदेश, गुण आदि कार्य है। सूत्र में शेष शब्द का प्रयो
स्पष्टता के लिए है, शेष का अर्थ है बचा हुआ अर्थात् जो नदी संज्ञा से बचे हुए इकारान
और उकारान्त है उनकी ही घिसंज्ञा होती है।

'हरि' शब्द नदी संज्ञक से भिन्न है, ह्रस्व इकारान्त है और सखि भी नहीं है, अतः
इस सूत्र से इसकी घि संज्ञा होगी।

नादेशविधायकं विधि सूत्रम्।

६३. आङो नाऽस्त्रियाम्।।७।३।१२०।।

**वृत्ति—घे परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङिति टासंज्ञा। (प्राचाम्) हरिणा।
हरिभ्याम्। हरिभिः।**

अर्थ—घि संज्ञक से परे जो आङ् अर्थात् टा विभक्ति को 'ना' आदेश हो, किन्तु
यह आदेश स्त्रीलिङ्ग में न हो।

व्याख्या—महर्षि पाणिनि से पूर्व उन प्राचीन आचार्यों ने 'टा' प्रत्यय की 'आङ्'
संज्ञा की है और पाणिनि ने भी अपनी व्याकरण में 'टा' प्रत्यय के लिए आङ् शब्द का
व्यवहार किया है।

हरिणा—'हरि' शब्द से तृतीया एकवचन में 'टा' प्रत्यय, **हरि + टा** अनुबन्ध लोप
हरि + आ इस स्थिति में 'शेषो ध्यसखि' से हरि की घिसंज्ञा और **आङो नाऽस्त्रियाम्** से
टा के आकार के स्थान पर 'ना' आदेश होकर **हरि + ना** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**
से नकार का णकार होकर **'हरिणा'** रूप सिद्ध होता है।

हरिभ्याम्—हरि शब्द से तृतीया द्विवचन में भ्याम् आया। इदन्त होने के कारण
दीर्घ न होकर केवल वर्ण सम्मेलन करके **हरिभ्याम्** रूप सिद्ध होता है।

चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भी हरिभ्याम् ही बनता है।

हरिभिः—तृतीया बहुवचन में 'भिस्' प्रत्यय परे हरि + भिस् में सकार का रुत्व
विसर्ग करके हरिभिः रूप बनता है।

गुणविधायकं विधि सूत्रम्

६४. घेर्ङिति।।७।३।१११।।

वृत्ति—घिसंज्ञस्य ङिति सुपिगुणः स्यात्। हरये। हरिभ्याम्। हरिभ्यः।

अर्थ—घिसंज्ञक अंग को ङित् सुप् परे होने पर गुण हो।

व्याख्या—ङित् सुप् प्रत्यय है—**ङे, ङसि, ङस्, ङि** अर्थात् जिसमें ङकार इत्संज्ञक
हो उसे ङित् कहा जाता है, ऐसे ङित् सुप् के परे होने पर यह सूत्र गुण आदेश करता है।
यथा—

हरये—'हरि' शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' प्रत्यय, **हरि + ङे** अनुबन्ध लोप होकर **हरि + ए** इस स्थिति में हरि की घिसंज्ञा, घेर्ङिति से इकार के स्थान पर गुण होकर **हरे + ए** बना। **एचोऽयवायावः** से एकार का अय् आदेश होकर **हर् + अय् + ए** बना। वर्णसम्मेलन करके **'हरये'** रूप सिद्ध होता है।

हरिभ्यः—चतुर्थी बहुवचन में **भ्यस्** प्रत्यय परे होने पर, सकार का रुत्व विसर्ग और वर्णसम्मेलन करके **हरिभ्यः** रूप बनता है।

पूर्वरूप विधायकं विधि सूत्रम्।

६५. ङसिङसोश्च।।६।१।११०।।

वृत्ति—एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेः २। हार्योः २ हरीणाम्।

अर्थ एवं व्याख्या—एङ् (ए, ओ) से ङसि और ङस् प्रत्ययों के ह्रस्व अकार के परे रहते पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है। **यथा—**

हरेः—'हरि' शब्द से पञ्चमी एकवचन में ङसि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, घिसंज्ञा होकर **हरि + अस्** को घेर्ङिति से गुण हुआ। **हरे + अस्** बना। **ङसिङसोश्च** से एकार और अकार के स्थान पर पूर्वरूप एकार आदेश होकर **हरेस्** बना और सकार का रूत्वविसर्ग होकर **हरेः** रूप सिद्ध होता है।

षष्ठी एकवचन में भी **हरेः** ही बनता है।

हर्योः—षष्ठी द्विवचन में 'ओस्' प्रत्यय लाने पर हरि + ओस् इस स्थिति में **इकोयणचि** से यण् अर्थात् इकार का यकार आदेश होकर हर् + य् + ओस् में वर्णसम्मेलन करके **हर्योस्** बना, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **हर्योः** रूप बनता है।

हरीणाम्—षष्ठी बहुवचन आम् प्रत्यय **हरि + आम्** इस स्थिति में **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** से 'नुट्' का आगम **हरि + नुट् + आम्** अनुबन्ध लोप होकर **हरि + नाम्, 'नामि'** सूत्र से इकार का दीर्घ और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार का णकार होकर **हरीणाम्** रूप बनता है।

औदादेशादिविधायकं विधिसूत्रम्।

६६. अच्च घेः।।७।३।११९।।

वृत्ति—इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत्, घेरत् स्यात्। हरौ। हरिषु। एवं काव्यादयः।

अर्थ—ह्रस्व इकार और उकार के परे ङि प्रत्यय के स्थान पर औत् (औकार) आदेश घिसंज्ञक के स्थान पर अत् (अकार) आदेश हो।

व्याख्या—यह सूत्र दो कार्यों को करता है पहले तो ह्रस्व इकार और उकार के परे 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'औकार' आदेश करता है और दूसरा 'घिसंज्ञक' वर्ण अर्थात् 'ह्रस्व इकार और उकार' का 'अत्' अर्थात् 'ह्रस्व अकार' आदेश करता है। **यथा—**

हरौ—'हरि' शब्द से सप्तमी एकवचन में 'ङि' प्रत्यय **हरि + ङि** अनुबन्ध लोप होकर **हरि + इ** इस स्थिति में **शेषो घ्यसखि** से घिसंज्ञा, **अच्च घेः** से ङि के इकार का

औकार और हरि के इकार का अकार आदेश होकर **हर + औ** बना, इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** से अ +औ का वृद्धिरूप एकादेश होकर **'हरौ'** रूप सिद्ध होता है।

हरिषु—सप्तमी बहुवचन में 'हरि' शब्द से 'सुप्' प्रत्यय आया **हरि + सुप्** इसस्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **हरि + सु** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से सकार का षकार आदेश होकर **'हरिषु'** रूप सिद्ध होता है।

एवमिति—इसी प्रकार कवि आदि इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के भी रूप बनेंगे, किन्तु सखि, पति, कति, द्वि और त्रि शब्द इकारान्त होने पर भी हरि शब्द से भिन्न है।

हरि—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे!	हे हरी!	हे हरयः!

सखि (मित्र) शब्द—

अनङादेशविधायकंविधिसूत्रम्

६७. अनङ् सौ।।७।९३।।

वृत्ति—सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

अर्थ—सखिरूप अङ्ग को अनङ् आदेश हो, सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते।

व्याख्या—प्रथमा एकवचन के समान ही सम्बोधन एक वचन में भी सु प्रत्यय आता है, परन्तु सम्बोधन के सु प्रत्यय की सम्बुद्धि संज्ञा होती है। यह सूत्र सम्बुद्धिसंज्ञक सु प्रत्यय से भिन्न, प्रथमा एकवचन के सु प्रत्यय परे होने पर ही अनङ् आदेश करता है। अनङ् में ङकार तथा नकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होकर अन् शेष बचता है। अनङ् आदेश ङित् होने से **ङिच्च** सूत्र से यह आदेश 'सखि' के अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर होता है, सम्पूर्ण 'सखि' के स्थान पर नहीं।

उपधासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

६८. अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा।।१।१।६५।।

वृत्ति—अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्।

अर्थ—वर्णों के समुदाय में जो अन्तिम वर्ण हो, उससे पूर्व के वर्ण की यह उपधा संज्ञा हो।

व्याख्या—इस सूत्र के प्रवृत्त होने में पद अपद, धातु, प्रातिपदिक आगम, आदेश आदि की,अपेक्षा न होकर वर्णों के किसी भी समुदाय में जो अन्तिम वर्ण हो उसके पूर्व वर्ण की अपेक्षा होती है। **यथा—सख् अन् + सु** में 'सख् अन्' का अन्त्य वर्ण नकार है और उससे पूर्व का वर्ण अकार है, अतः उक्त सूत्र से अकार की उपधा संज्ञा होती है।

दीर्घविधायकं विधि सूत्रम्।

६९. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ।।६।४।८।।

वृत्ति—नान्तस्योपधया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

अर्थ—नान्त की उपधा को दीर्घ, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

व्याख्या—सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनाम स्थान संज्ञक सु प्रत्यय के परे होने पर नकारान्त के पूर्व उपधा संज्ञक अकार के स्थान पर उक्त सूत्र से दीर्घ आदेश होता है। **यथा**—सख् अन् + सु इन स्थिति में नकार के पूर्व अकार के स्थान पर आकार आदेश होकर सख् आन् + सु हो जाता है। सु के उकार का लोप होकर सख् आन् + स् यह स्थिति बनती है।

अपृक्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

७०. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः।।१।२।४१।।

वृत्ति—एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

अर्थ—एक अल् (वर्ण) वाला जो प्रत्यय, वह अपृक्त संज्ञक हो। अर्थात् उसकी अपृक्त संज्ञा होती है।

व्याख्या—सु प्रत्यय में स् और उ दो अल् थे किन्तु उकार की इत्संज्ञा और लोप होकर केवल स् एक अल् बचा, अतः सकार की अपृक्त संज्ञा होती है।

सुलोपविधायकं विधिसूत्रम्।

७१. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्।।६।१।६८।।

वृत्ति—हलन्तात्परं दीर्घो यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते।

अर्थ—जिसके अन्त्य में हल् हो ऐसे हलन्त से परे तथा दीर्घ जो ङी और आप् अन्त में हो ऐसे ङयन्त और आबन्त शब्दों से **परे सु-ति-सि** का जो अपृक्त संज्ञक हल्, उसका लोप हो।

व्याख्या—जिसके पूर्व में हल् वर्ण हो या ङी प्रत्यय का ईकार हो या टाप् प्रत्यय का आकार हो तो भी अपृक्त (एक अल्) सु के सकार ति के तकार और सि के सकार का इस सूत्र से लोप हो जाता है।

यथा—सखान् + स् इस स्थिति में सकार अपृक्त संज्ञक का लोप होकर **सखान्** शेष बचता है।

अतिदेश सूत्रम्।

७२. प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम्।।१।१।६२।।

वृत्ति—प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्यं स्यात।

अर्थ—प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय को मानकर तत् प्रत्ययाश्रित कार्य हो।

व्याख्या—जो कार्य प्रत्यय को निमित्त मानकर होते हैं, वो प्रत्यय के अदर्शन होने पर भी होते हैं। **यथा**—'जसि च' से जस् के परे होने पर पूर्व इगन्त अङ्ग को गुण होता है वह जस् प्रत्यय के परे होने पर भी होता है।

नकारलोपविधायकंविधिसूत्रम्।

७३. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य।।८।२।७।।

वृत्ति—प्रातिपदिक संज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः। सखा।

अर्थ—प्रातिपदिक संज्ञक जो पद, तदन्त जो नकार है उसका लोप हो।

व्याख्या—इस सूत्र के प्रातिपदिक संज्ञक जो पद होता है उसके अन्त में विद्यमान जो नकार है उस नकार का लोप हो जाता है। **यथा**—**सखान्** यह एक प्रातिपदिक पद है और इसके अन्त में नकार विद्यमान है, अतः उस नकार का लोप होकर **सखा** शेष बचता है।

सखा—मित्र वाचक सखि शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया। **सखि + सु** में अनुबन्ध लोप होकर **सखि + स्** बना। **ङिच्च** की सहायता से **अनङ्सौ** सूत्र से सखि के अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर अनङ् आदेश हुआ और अनुबन्ध लोप होकर 'अन्' बचा **सख् अन् + स्** इस स्थिति में **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधा संज्ञा और **सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ होकर **सखान् + स्** बना। **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से एक अल् स् प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होकर **हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** से स् का लोप, **सखान्** बचा। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर **सखा** रूप सिद्ध होता है। **सु** का पहले लोप हो जाने पर भी **प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षणम्** से सु प्रत्ययत्व मानकर पदसंज्ञक माना जाता है और पद के अन्त में विद्यमान नकार का लोप हो जाता है।

णिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्।

७४. सख्युरसम्बुद्धौ।।७।१।९२।।

वृत्ति—सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात्।

अर्थ—सखिरूप अङ्ग से परे जो सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान को णिद्वद्भाव हो।

व्याख्या—णित्वद्भाव का अर्थ है, जो णित् नहीं है अर्थात् जिसमें णकार की इत्संज्ञा नहीं हुई है, वह भी णित्वत् मान लिया जाये और णित्वत् मानकर जो कार्य हो सकते हैं, वह हो जाये। यह अतिदेश सूत्र है। अतिदेश का अर्थ है जो वैसा नहीं है, उसे वैसा मानना। जैसे—औ, जस्, अम्, औट् ये स्वतः णित् नहीं है किन्तु 'सखि' शब्द से परे होने पर इनका णिद्वद्भाव होकर **अचो ञ्णिति** से वृद्धि हो जाती है।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्।

७५. अचो ञ्णिति।।७।२।११५।।

वृत्ति—अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे। सखायौ। सखायः। हे सखे!। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या। सख्ये।

अर्थ–ञित् या णित् प्रत्यय के परे होने पर, अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो।

व्याख्या–जिसमें ञ् इत्संज्ञक हो वे ञित् और जिसमें ण् इत्संज्ञक हो वे णित् कहलाते हैं और जिन स्वरों की अङ्ग संज्ञा हुई हो वे अजन्ताङ्ग कहलाते हैं। ऐसे ञित् और णित् प्रत्यय के परे होने पर अजन्ताङ्ग को वृद्धि आदेश होता है। **यथा**–

सखायौ–'सखि' शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय आने पर **सखि + औ** इस स्थिति में **सख्युरसम्बुद्धौ** से णिद्वद्भाव होकर **'अचो ञ्णिति'** से सखि के इकार को वृद्धि 'ऐ' होकर **सखै + औ** बना। **एचोऽयवायावः** से ऐकार का 'आय्' आदेश होकर **सख् + आय् + औ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **सखायौ** रूप सिद्ध हुआ।

सखायः–सखि शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय आया। **सखि + जस्** में अनुबन्ध लोप होकर **सखि + अस्** इस स्थिति में णिद्वद्भाव, वृद्धि, 'आय्' आदेश और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **सखायः** रूप सिद्ध होता है।

सर्वनामस्थान अर्थात् औट् तक **सखायाम् और सखायो** इसी प्रकार णिद्वद्भाव, वृद्धि और आय् आदेश करके वर्णसम्मेलन करने पर सिद्ध हो जायेंगे।

हे सखे ! हे सखायौ! हे सखायः–सम्बोधन के एकवचन में **सखि + सु** अनुबन्धलोप होकर **सखि + स्** इस स्थिति में **ह्रस्वस्यगुणः** सूत्र से सखि के इकार के स्थान पर गुण एकार आदेश **सखे + स्** होकर एकवचन सम्बुद्धि से सम्बुद्धि संज्ञा **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप **हे** का पूर्व प्रयोग होकर **हे** सखे रूप सिद्ध होता है। द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के द्विवचन और बहुवचन के समान बनाकर **हे** का पूर्वप्रयोग करने पर **हे सखायौ, हे सखायः** रूप सिद्ध होते हैं।

सखीन्–द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय आने पर **सखि + शस्** अनुबन्ध लोप होकर **सखि + अस्** इस स्थिति में इकार को पूर्व सवर्ण दीर्घ तथा **तस्माच्छसोः नः पुंसि-से** सकार का नकार होकर **सखीन्** रूप सिद्ध होता है।

सख्या–तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **सखि + आ** इस स्थिति में इकार का यण् आदेश **सख् + य् + आ** का वर्णसम्मेलन करके **सख्या** रूप बनता है। घिसंज्ञा न होने पर टा को ना आदेश नहीं होता है।

सखिभ्याम्। सखिभिः। सखिभ्यः–भ्याम् में केवल प्रत्यय को जोड़कर सिद्ध करना है। भिस् और भ्यस् में सकार का रुत्व-विसर्ग करके सिद्ध करना है।

सख्ये–चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय सखि + ङे अनुबन्ध लोप होकर **सखि + ए** इस स्थिति में इकार का यण् **सख् + य् + ए** वर्ण सम्मेलन करके **सख्ये** सिद्ध होता है।

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्।

७६. ख्यत्यात्परस्य।।६।१।११२।।

वृत्ति–खितिशब्दभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः।

अर्थ–जिनके स्थान पर यण् किया गया हो ऐसे खि-शब्द और ति-शब्द अथवा खी-शब्द और ती शब्द से परे ङसि और ङस् के अकार के स्थान पर उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश होता है।

व्याख्या—यह सूत्र ङसि और ङस् के अकार का उकार जब करता है तब प्रत्य के पूर्व इकार अथवा ईकार का यण् आदेश किया गया हो, क्योंकि यणादेश के अभाव उकार आदेश नहीं होगा।

यथा—

सख्युः—सखि शब्द से पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में ङसि और ङस् प्रत्य आने पर, अनुबन्ध लोप करने पर **सखि + अस्** बना। इकार का यण् करके **सख् + य् + अस्** बना। **ख्यात्यात्परस्य** से विभक्ति के अकार के स्थान पर उकार आदेश होकर सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **सख्युः** रूप सिद्ध होता है।

सख्योः। सखीनाम्—हर्योः के समान सख्योः और हरीणाम् के समान सखीनाम् बनते हैं, किन्तु सखीनाम् में रेफ और षकार न होने पर नकार को णकार आदेश नहीं होता है।

औदादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

७७. औत्।।७।३।११८।।

वृत्ति—इतः परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेष हरिवत्।

अर्थ—ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि प्रत्यय के स्थान पर औत् अर्थात् औकार आदेश होता है।

व्याख्या—ह्रस्व इकारान्त पुल्लिङ्ग में सखि और पति की घिसंज्ञा नहीं होती है। '**अच्च घेः**' सूत्र इसका बाधक है परन्तु घिसंज्ञक न होने के कारण यह सूत्र केवल 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'औ' आदेश करता है।

यथा—सख्यौ—सखि शब्द से ङि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **सखि + इ** इस स्थिति में इकार का औकार आदेश **सखि + औ** इकार का यण् आदेश **सख् + य् + औ** वर्णसम्मेलन करने पर '**सख्यौ**' रूप सिद्ध होता है।

सप्तमी द्विवचन में षष्ठी द्विवचन के समान **सख्योः**, तथा बहुवचन में **हरिषु** के समान ही **सखिषु** रूप बनता है।

सखि—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चंतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !

घिसंज्ञाविधायकं नियमसूत्रम्।

७८. पतिः समास एव।।१।४।८।।

वृत्ति—(पतिः समास एव) घिसंज्ञः। पत्या पत्ये। पत्युः २। पत्यौ। शेष हरिवत्। समासे तु भूपते। कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः।

अर्थ—'**शेषो घ्यसखि**—सूत्र के आधार पर समास और असमास दोनों में ही घिसंज्ञा प्राप्त हो रही थी, किन्तु इस सूत्र से पति शब्द की घिसंज्ञा तभी होगी, जब किसी शब्द के साथ समास हो। **यथा—रमायाः** पतिः = **रमा + पति**, रमापति। इस प्रकार से समास होने पर पति शब्द की घिसंज्ञा होगी, अकेले पति शब्द की नहीं।

प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में घिसंज्ञा प्रयुक्त कोई कार्य नहीं होता इन दोनों विभक्तियों में पति के रूप हरि शब्द के समान ही बनते हैं।

यथा—प्रथमा विभक्ति में—पतिः, पती, पतयः। द्वितीया विभक्ति में—पतिम्, पती, पतीन्।

घिसंज्ञा प्रयुक्त कार्य केवल पाँच स्थलों पर होता है—

१. तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर आङोनाऽस्त्रियाम् से 'ना' आदेश।

२. चतुर्थी एकवचन में **ङे** प्रत्यय के परे होनेपर घेर्ङिति से इकार को गुणादेश।

३. पञ्चमी विभक्ति एकवचन में **ङसि** प्रत्यय के परे होने पर **घेर्ङिति** से इकार को गुणादेश।

४. षष्ठी एकवचन में **ङस्** प्रत्यय के परे होने पर **घेर्ङिति** से इकार को गुणादेश।

५. सप्तमी एकवचन में **ङि** प्रत्यय आने पर **अच्च घेः** से ङि प्रत्यय का औकार आदेश और घिसंज्ञक इकार का अकार आदेश।

समास रहित पति शब्द की उक्त पाँच स्थलों पर घि संज्ञा नहीं होगी तो घिसंज्ञा प्रयुक्त कोई कार्य भी नहीं होंगे। **यथा**—

पत्या—पति शब्द से तृतीया एकवचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **पति + आ**, घिसंज्ञा के अभाव में **इकोयणचि से** ति के इकार का यण् आदेश **पत् + य् + आ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **पत्या** रूप बनता है।

पत्ये—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **पति + ए** घिसंज्ञा के अभाव में **इकोयणचि से** यण् आदेश, **पत् + य् + ए** बना। वर्ण सम्मेलन करने पर **पत्ये** रूप सिद्ध होता है।

पत्युः—पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **पति + अस्** बना। **इकोयणचि** से ति के इकार का यण् आदेश **पत्य् + अस्** बना। **ख्यत्यात्परस्य** से अस् के अकार का उकार आदेश पत्य् + उस् बना। सकार का रूत्व-विसर्ग होकर **पत्युः** रूप बनता है।

पत्यौ—सप्तमी के एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध **लोप, पति + इ** बना। **औत्** से ङि प्रत्यय के इकार का औकार आदेश **पति + औ** बना। **इकोयणचि** से ति के इकार का यण् आदेश होकर **पत्य् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन करने पर **पत्यौ रूप** सिद्ध होता है।

पति—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते!	हे पती!	हे पतयः!

जब पति शब्द का किसी शब्द के साथ समास होगा तो उसके रूप हरि शब्द के समान बनेंगे। यथा—भुवः पतिः = भूपति।

भूपति—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
द्वितीया	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृतीया	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
चतुर्थी	भूपतये	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
पञ्चमी	भूपतेः	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
षष्ठी	भूपतेः	भूपत्योः	भूपतीनाम्
सप्तमी	भूपतौ	भूपत्योः	भूपतिषु
सम्बोधन	हे भूपते!	हे भूपती!	हे भूपतयः!

इसी प्रकार नृपति, गणपति, सभापति, सेनापति, पशुपति, रमापति आदि के रूप भी भूपति के समान ही बनेंगे।

कतीति—कति (कितने) **'किम्' शब्द से 'डति' प्रत्यय** होकर कति शब्द बनता है और इसका प्रयोग नित्य बहुवचन में ही होता है, एकवचन और द्विवचन में कदापि नहीं होता। यह शब्द बहुत्व का वाचक है।

संख्यासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

७९. बहुगणवतुडति संख्या ।।१।१।२३।।

वृत्ति—**बहुगण शब्दौ वतुडत्यान्ताश्च संख्या संज्ञकाः स्युः।**

अर्थ—बहु, गण शब्द तथा वतु और डति प्रत्ययान्त शब्द संख्या संज्ञक हो।

व्याख्या—बहु (बहुत) गण (समूह) वतु अर्थात् वतु प्रत्यय जिसके अन्त में हो

यथा—यावत्, तावत् आदि तथा डति प्रत्ययान्त शब्द कति आदि संख्या संज्ञक होते हैं। पहले तो ये शब्द संख्या वाचक नहीं थे, इस सूत्र से इनकी संख्या संज्ञा की गई है।

षट्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

८०. डति च।।१।१।२५।।

वृत्ति—डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञास्यात्।

अर्थ—डति प्रत्ययान्त संख्यासंज्ञक शब्द षट्-संज्ञक हो।

व्याख्या—कति शब्द डति प्रत्ययान्त संख्या संज्ञक है, अतः इस सूत्र से इसकी षट् संज्ञा हुई।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्।

८१. षड्भ्यो लुक्।।७।१।२२।।

वृत्ति—जश्शसोः।

अर्थ—षट्संज्ञक शब्दों से परे जस् और शस् का लुक् (लोप) होता है।

व्याख्या—उक्त सूत्र के द्वारा कति शब्द षट्संज्ञक है, यह नित्य बहुवचनान्त भी है, अतः इससे प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचनों की विवक्षा में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय होते हैं, और इस सूत्र से दोनों का लोप होकर दोनों स्थानों पर कति, कति यही स्थिति रहेगी।

लुक्-श्लु-लुप्-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

८२. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः।।१।१।६१।।

वृत्ति—लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात् तत्तत्संज्ञं स्यात्।

अर्थ—लुक्, श्लु और लुप् शब्द का उच्चारण करके जो प्रत्यय का अदर्शन किया जाता है, उस अदर्शन की क्रमशः लुक्, श्लु और लुप् संज्ञा होती है।

व्याख्या—प्रत्यय के अदर्शन की विशेष स्थिति में उसकी एक विशेष प्रकार की संज्ञा होती है। इस सूत्र का विधान है कि यदि सूत्र में लुक्, श्लु और लुप् शब्द का उच्चारण करके प्रत्यय का अदर्शन किया जाता है तो सामान्य अदर्शन लोप के समान ही इन्हें क्रमशः लुक्, श्लु, लुप् कहा जाता है।

प्रत्ययलक्षण निषेध सूत्रम्।

८३. न लुमताङ्गस्य।।१।१।६३।।

वृत्ति—लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात्।

कति २। कतिभिः। कतिभ्यः २। कतीनाम्। कतिषु।

युष्मदस्मत् षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः।

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २।

अर्थ—लुमता अर्थात् 'लु' वाले-(लुक्, श्लु, लुप्) शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन होने पर उन्हें निमित्त मानकर होने वाला अङ्ग सम्बन्धी कार्य न हो।

व्याख्या—लुक्, श्लु और लुप् ये 'लु' वर्ण होते है। जहाँ पर लु वाले शब्दों से प्रत्यय का लोप होता है, वहाँ प्रत्यय को निमित्त मानकर होने वाला अङ्गकार्य नहीं होता है। **यथा**—

कति—किम्-शब्द से 'डति' प्रत्यय होकर कति बना। **कति शब्द** से बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **कति + अस्** बना। **बहुगणवतुडति संख्या** से कति की संख्या संज्ञा और **डति च** से षट्संज्ञा करके **षड्भ्यो लुक्** षट्संज्ञक कति से परे जस् का लुक् हुआ और कति शेष बचा। अब '**प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**' के नियम से जस् को निमित्त मानकर **जसि च** से कति के इकार को गुण प्राप्त था, किन्तु श्लु इस लु वाले शब्द से प्रत्यय का अदर्शन होने से **न लुमताङ्गस्य** से गुण का निषेध हो जाता है और **कति रूप** सिद्ध होता है।

द्वितीया बहुवचन में भी शस् प्रत्यय आने पर इसी प्रकार से ही '**कति**' रूप बनता है।

कतिभिः। कतिभ्यः। कतीनाम्। कतिषु—ये सभी रूप हरि शब्द के समान ही सिद्ध होंगे। कति के रूप केवल बहुवचन में ही बनेंगे।

यथा—कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु।

युष्मदस्मदिति—युष्मद्, अस्मद् और षट्संज्ञक शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान ही बनते है। **यथा**—कति पुरुषाः ? कति—स्त्रियः ? कति पुष्पाणि आदि।

त्रिशब्द इति—त्रि शब्द का प्रयोग नित्य बहुवचन में होता है। क्योंकि यह शब्द बहुत्व का वाचक है। **यथा**—

त्रयः—'त्रि' शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **त्रि + अस्** इस स्थिति में '**जसि च**' से इकार को गुणादेश होकर **त्रे + अस्** बना। **एचोऽयवायावः** से एकार का अय् आदेश **त्र् + अय् + अस्** में सकार का रुत्व-विसर्ग, वर्ण सम्मेलन करके '**त्रयः**' रूप सिद्ध होता है।

त्रीन्—द्वितीया के बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **त्रि + अस्** इस स्थिति में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्व सवर्ण दीर्घ तथा **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार का नकार होकर **त्रीन्** रूप सिद्ध होता है।

त्रिभिः—तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय परे सकार को रुत्व-विसर्ग होकर **त्रिभिः** रूप सिद्ध होता है।

त्रिभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर, चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति में **त्रिभ्यः, त्रिभ्यः** रूप बनता है।

त्रयादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

८४. त्रेस्त्रयः।।७।१।५३।।

वृत्ति—त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि। त्रयाणाम्। त्रिषु। गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्।

अर्थ—आम् के परे रहते **त्रिशब्द** को त्रय आदेश हो।

व्याख्या—षष्ठी बहुवचन में त्रि शब्द में आम् प्रत्यय आता है। आम् प्रत्यय के परे होने पर त्रिशब्द के स्थान पर त्रय आदेश होता है। त्रय आदेश अदन्त है। **यथा**—

त्रयाणाम्—त्रि शब्द से आम् परे रहते **त्रेस्त्रयः** से त्रय आदेश होकर **त्रय + आम्** हुआ **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् और **नामि** से दीर्घ करके णत्व होकर **त्रयाणाम्** रूप बनता है।

त्रिषु—सप्तमी के बहुवचन में 'सुप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **त्रि + सु** इस स्थिति में **आदेश प्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर। 'त्रिषु' रूप बनता है।

गौणत्वेऽपि इति—समास होने पर त्रि शब्द अप्रधान हो जाता है तो भी इस सूत्र से त्रि शब्द को आम् प्रत्यय परे होने पर त्रय आदेश होता है।

यथा—प्रियाः त्रयः यस्य सः जिसके तीन प्रिय हो अर्थात् इस बहुब्रीहि समास में तीन प्रिय वाला अन्य किसी पुरुष का अर्थ प्रधान है,न कि समास किये गये **प्रिय** और **त्रि** का, अतः **प्रियत्रि** में स्थित त्रि शब्द गौण (अप्रधान) है तो भी यह सूत्र **प्रियत्रि** से आम् प्रत्यय परे होने पर '**त्रि**' के स्थान पर त्रय आदेश करेगा। और **प्रियत्रयाणाम्** रूप बनेगा।

अत्वविधायकं विधिसूत्रम्।

८५. त्यदादीनामः ।।७।२।१०२।।

वृत्ति—एषा मकारो विभक्तौ।

वार्तिकम्—द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः।

द्वौ २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २।।

अर्थ और व्याख्या—विभक्ति के परे होने पर त्यदादिगण में पठित शब्दों के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अकार आदेश होता है।

द्विपर्यन्तानामिति—इस सूत्र से अकार करने के लिए भाष्यकार ने त्यदादिगण में **त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि** ये आठ शब्द ही माने हैं। इस गण में पठित अन्य जैसे—**युष्मद्, अस्मद्, भवतु और किम्** इन चार शब्दों में अकार आदेश नहीं होगा।

द्वौ—द्वि शब्द केवल द्विवचन वाला है। द्वि शब्द से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में क्रमशः 'औ' और 'औट्' प्रत्यय आते हैं। औट् में अनुबन्ध लोप होकर 'औ' शेष बचता है। **द्वि + औ** इस स्थिति में **त्यदादीनामः** से 'द्वि' के इकार का अकार आदेश होकर **द्व + औ** में **वृद्धिरेचि** सूत्र से वृद्धि होकर **द्व + औ** बना। **वर्णसम्मेलन** करके दोनों स्थानों पर **द्वौ, द्वौ** रूप बनेंगे।

द्वाभ्याम्—द्वि शब्द से तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् प्रत्यय **द्वि + भ्याम्** इस स्थिति में **त्यदादीनामः** से इकार का अकार **द्व + भ्याम्** में **सुपि च** से दीर्घ होकर **द्वाभ्याम्** रूप बनता है।

द्वयोः—द्विशब्द से षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में **ओस्** प्रत्यय **द्वि** + ओस्, **त्यदादीनामः** से इकार का अकार **द्व** + **ओस्, ओसि च** से अकार का एत्व **द्वे** + ओस्, **एचोऽयवायावः** से एकार का **अय्, द्व्** + **अय्** + **ओस्**, सकार का रुत्व-विसर्ग, वर्ण सम्मेलन कर दोनों में **द्वयोः, द्वयोः** रूप सिद्ध होता है।

।।ह्रस्व इकारान्त शब्द समाप्त।।

दीर्घ ईकारान्त पुल्लिङ्ग-शब्द

पाति लोकमिति पपीः सूर्यः। दीर्घाज्जसि च—पप्यौ २। पप्यः। हे पपीः। पपीम्। पपीन्। पप्या। पपीभ्याम् ३। पपीभिः। पप्ये। पपीभ्यः २। पप्यः २ पप्योः २। दीर्घत्वान्न नुट्, पप्याम्। ङौ तु सवर्णदीर्घ, पपी। पप्योः। पपीषु। एवं वातप्रम्यादयः। बह्वयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी।।

अर्थ—पाति लोकमिति **पपीः**। संसार की रक्षा करने वाला सूर्य। **पा** रक्षणे धातु से **उणादि** में ई प्रत्यय, द्वित्व, आकार का लोप होकर 'पपी' शब्द बनता है।

पपीः—दीर्घ ईकारान्त 'पपी' शब्द से प्रथमा एकवचवन में सु प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप होकर **पपी** + **स्** इस स्थिति में सकार को रुत्व-विसर्ग होकर **पपीः** रूप बनता है।

पप्यौ—प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में क्रमशः औ और औट् प्रत्यय, औट् के ट् का लोप होकर **पपी** + **औ** इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ का **दीर्घाज्जसि** से निषेध होकर **इकोयणचि** से यण् होकर **पप्य्** + **औ** का वर्णसम्मेलन कर **पप्यौ** रूप बनते हैं।

पप्यः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **पपी** + **अस्** में यण् आदेश और सकार का रुत्व विसर्ग होकर पप्यः रूप बनता है।

हे पपीः—सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय आने पर, अनुबन्ध लोप होकर **पपी** + **स्** ह्रस्वान्त न होने से सकार का लोप न होकर रुत्व विसर्ग होता है और हे का पूर्व प्रयोग हे **पपीः** रूप बनता है। द्विवचन और बहुवचन में भी प्रथमा द्विवचन और बहुवचन की भाँति **हे पप्यौ, हे पप्यः** रूप बनते हैं।

पपीम्—द्वितीया एक वचन में अम् प्रत्यय **पपी** + **अम्** पूर्वरूप होकर **पपीम्** रूप बनता है।

पपीन्—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **पपी** + **अस्** पूर्वसवर्ण दीर्घ **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार का नकार होकर **पपीन्** रूप बनता है।

पप्या—तृतीया एकवचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **पपी** + **आ** ईकार का यण् होकर **पप्या** रूप बनता है।

पपीभ्याम्—तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् प्रत्यय, **पपी** + **भ्याम्** का वर्ण सम्मेलन करने पर तीनों में '**पपीभ्याम्**' रूप बनता है।

पपीभिः—तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय आने पर पपी + भिस् सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **पपीभिः** रूप बनता है।

पप्ये—चतुर्थी एक वचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **पपी** + **ए** ईकार का यण् आदेश **पप्य्** + **ए** वर्ण सम्मेलन कर **पप्ये** रूप बनता है।

पपीभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **पपीभ्यः** रूप बनता है।

पप्यः—पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **पपी** + **अस्** बचा। इस स्थिति में ईकार का यण् होकर तथा सकार का रुत्व-विसर्ग होकर दोनों में **पप्यः** रूप बनते हैं।

पप्योः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय **पपी** + **ओस्** इस स्थिति में ईकार का यण् होकर सकार का रुत्व-विसर्ग होकर दोनों में **पप्योः** रूप बनते हैं।

पप्याम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय **पपी** + **आम्** में ईकार का यण् होकर **पप्** + **य्** + **आम्** वर्णसम्मेलन करके पप्याम् रूप बनता है।

पपी—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **पपी** + **इ** इस स्थिति में **अकः सवणे दीर्घः** से सवर्ण दीर्घ होकर '**पपी**' रूप बनता है।

पपीषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, प् की इत्संज्ञा और लोप **पपी** + **सु** में **आदेश प्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर '**पपीषु**' रूप बनता है।

पपी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पपीः	पप्यौ	पप्यः
द्वितीया	पपीम्	पप्यौ	पप्यः
तृतीया	पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः
चतुर्थी	पप्ये	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
पञ्चमी	पप्यः	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
षष्ठी	पप्यः	पप्योः	पप्याम्
सप्तमी	पपी	पप्योः	पपीषु
सम्बोधन	हे पपीः!	हे पप्योः!	हे पप्यः!

एवमिति—वातप्रमी अर्थात् वातं प्रमिमीते इति वातप्रमी अर्थात् जो हवा को मापता है, या हवा के समान तेज दौड़ता हो वह मृग **वातप्रमी** कहलाता है।

वातप्रमी और ययी के रूप भी पपी के समान ही बनेंगे।

बह्वयः श्रेयस्यो यस्य सः बहुश्रेयसी। बहुत सी कल्याणकारिणी स्त्रियाँ हैं जिसकी वह बहुश्रेयसी पुरुष। श्रेयसी-शब्द ङीप् प्रत्ययान्त होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में है किन्तु समास होकर श्रेयसी वाला जो पुरुष इस अर्थ से श्रेयसी शब्द पुल्लिङ्ग हो जाता है किन्तु शब्द ङयन्त ही रहता है और ङयन्त मानकर सुलोप आदि सभी कार्य होते हैं।

बहुश्रेयसी—बहुश्रेयसी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप होकर 'बहुश्रेयसी + स्' इस स्थिति में सकार की अपृक्त संज्ञा होकर **हलङ्याब्भ्यो०**-सूत्र से अपृक्त हल् सकार का लोप होकर '**बहुश्रेयसी**' रूप बनता है।

बहुश्रेयस्यौ। बहुश्रेयस्यः—प्रथमा द्विवचन और बहुवचन में ईकार का यण् होकर **बहुश्रेयस्यौ** और **बहुश्रेयस्यः** रूप बनते हैं।

नदीसंज्ञाविधायकं संज्ञा सूत्रम्।

८६. यू स्त्र्याख्यौ नदी।।१।४।३।।

वृत्ति—ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसञ्ज्ञौ स्तः।

(वा०) प्रथम लिङ्गग्रहणं च।

पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जन्त्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः।

अर्थ—दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त जो नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द है उनकी नदी संज्ञा हो।

व्याख्या—नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द वे कहे जाते हैं जिनका प्रयोग केवल स्त्रीलिङ्ग में ही होता है। पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में कदापि नहीं और वे ईदन्त और ऊदन्त भी हो तो उनकी नदी संज्ञा होती है।

(वा०) प्रथमेति—यहाँ नदीसंज्ञा प्रकरण में प्रथम लिङ्ग का भी ग्रहण होता है। यदि समास होने से पूर्व शब्द स्त्रीलिङ्ग था और समास के बाद पुल्लिङ्ग हो जाने पर भी स्त्रीलिङ्ग मानकर उसकी नदी संज्ञा हो जायेगी। **यथा—'बहुश्रेयसी'** इसमें केवल श्रेयसी शब्द स्त्रीलिङ्ग किन्तु 'बहु' के साथ समास होकर पुल्लिङ्ग हो जाता है फिर भी इस वार्तिक के बल से प्रथमलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग को ग्रहण करके इसकी नदी संज्ञा हो जाती है।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्।

८७. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः।।७।३।१०७।।

वृत्ति—सम्बुद्धौ। हे बहुश्रेयसि।

अर्थ—अम्बार्थक शब्दों और नद्यन्त शब्दों को सम्बुद्धि के परे रहते ह्रस्व हो।

व्याख्या—जिन शब्दों का अर्थ अम्बा (माता) है और ऐसे शब्द जिनकी नदीसंज्ञा हो गई है, ऐसे शब्दों के अन्त में विद्यमान वर्ण **को अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा से ह्रस्वादेश होता है। **यथा—हे बहुश्रेयसि**—सम्बोधन का एकवचन सु प्रत्यय, **'प्रथमलिङ्गग्रहणं च'** इस वार्तिक के सहयोग से **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** से नदीसंज्ञा होकर, **'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः'** से सी के ईकार का ह्रस्व होकर **बहुश्रेयसि + स्** बना। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप और 'हे' का पूर्व प्रयोग होकर 'हे बहुश्रेयसि' रूप बनता है।

बहुश्रेयसीम्। बहुश्रेयसीन्—द्वितीया के एकवचन में अम् प्रत्यय **बहुश्रेयसी + अम्, अमिपूर्वः** से पूर्वरूप होकर **बहुश्रेयसीम्** रूप बनता है। द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय **बहुश्रेयसी + शस्** अनुबन्ध लोप **बहुश्रेयसी + अस्**, पूर्वसवर्ण दीर्घ **बहुश्रेयसीस्**, सकार का नकार होकर **बहुश्रेयसीन्** रूप बनता है।

बहुश्रेयस्या—तृतीया के एकवचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप बहुश्रेयसी + आ, ईकार का यण् आदेश होकर 'बहुश्रेयस्या' रूप बनता है। **बहुश्रेयसीभ्याम्**—तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में **'बहुश्रेयसीभ्याम्'** रूप बनते हैं।

बहुश्रेयसीभिः—तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय के सकार का रुत्व विसर्ग होकर **बहुश्रेयसीभिः** रूप बनता है।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्।

८८. आण्नद्याः।।७।।३।।११२।।

वृत्ति—नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः।

अर्थ—नद्यन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति को आट् का आगम हो।

व्याख्या—नदी संज्ञक शब्दों के परे ङित् अर्थात् ङे ङसि, ङस्, ङि ये विभक्ति हो तो आट् का आगम होता है। आट् टित् है और **आद्यन्तौटकितो** के नियम से आट् का आगम प्रत्ययों के आदि में होता है।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्।

८९. आटश्च।।६।१।९०।।

वृत्ति—आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्या। बहुश्रेयसीनाम्।

अर्थ—आट् से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश हो।

व्याख्या—आट् से परे अच् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) परे हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान पर इस सूत्र से वृद्धि एकादेश हो जाता है।

बहुश्रेयस्यै—चतुर्थी एक वचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **बहुश्रेयसी + ए, 'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** से नदी संज्ञा, **अण्नद्याः** से एकार के आदि में आट् का आगम **बहुश्रेयसी + आट् + ए** अनुबन्ध लोप, **बहुश्रेयसी + आ + ए, 'आटश्च'** सूत्र से आ + ए में वृद्धि होकर **'ऐ'** बना **बहुश्रेयसी + ऐ** इस स्थिति में **इकोयणचि** से ईकार का यण् आदेश होकर **बहुश्रेयस् + य् + ऐ** बना। वर्ण सम्मेलन करके **'बहुश्रेयस्यै'** रूप सिद्ध होता है।

बहुश्रेयसीभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय **बहुश्रेयसी + भ्यस्** में सकार का रुत्व-विसर्ग करके **बहुश्रेयसीभ्यः** रूप बनता है।

बहुश्रेयस्याः—पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **बहुश्रेयसी + अस्** बना। **आण्नद्याः** से आट् का आगम **बहुश्रेयसी + आट् + अस्,** का अनुबन्ध लोप **बहुश्रेयसी + आ + अस्,** 'आटश्च' से आ + अ का वृद्धिरूप एकादेश तथा ईकार का यण् होकर, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **'बहुश्रेयस्याः'** रूप बनता है।

बहुश्रेयस्योः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय **बहुश्रेयसी + ओस्** इस स्थिति में ईकार का यण् और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **'बहुश्रेयस्योः'** रूप बनता है।

बहुश्रेयसीनाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय **बहुश्रेयसी + आम्** इस स्थिति में **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** सूत्र से नुट् का आगम **बहुश्रेयसी + नुट् + आम्** अनुबन्ध लोप, न शेष **'नामि'** से पुनः दीर्घ होकर **'बहुश्रेयसीनाम्'** रूप बनता है।

आमादेशविधायकं विधि सूत्रम्।

९०. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः।।७।३।११६।।

वृत्ति—नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम्। बहुश्रेयस्याम् शेषं पपीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। अतिलक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत्। प्रधीः।

अर्थ—नद्यन्त, आबन्त और नी-शब्द से परे ङि के स्थान पर आम् आदेश होता है।

व्याख्या—(ङेः आम् नदी-आप्-नीभ्यः) नदी संज्ञक शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे शब्दों से, आबन्त अर्थात् टाप्, डाप्, चाप् ये स्त्री प्रत्यय जिसके अन्त में हो और नी शब्द के परे ङि प्रत्यय के स्थान पर 'आम्' आदेश हो जाता है। **यथा**—

बहुश्रेयस्याम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **बहुश्रेयसी** + इ नदी संज्ञा, **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् आदेश **बहुश्रेयसी + आम्,** आम् का स्थानिवद्भाव होकर **आण्नद्याः** से आट् का आगम, **बहुश्रेयसी + आट् + आम्,** अनुबन्ध लोप, **आटश्च** से आ + आ में वृद्धिएकादेश **बहुश्रेयसी + आम्। 'इकोयणचि'** से ईकार का यण् होकर **बहुश्रेयस् + य् + आम्** बना। मिलाने पर **'बहुश्रेयस्याम्'** रूप बनता है।

बहुश्रेयसीषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **आदेशप्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर **'बहुश्रेयसीषु'** रूप बनता है।

बहुश्रेयसी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयस्यः
द्वितीया	बहुश्रेयसीम्	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसीन्
तृतीया	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभिः
चतुर्थी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
पञ्चमी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
षष्ठी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयीनाम्
सप्तमी	बहुश्रेयस्याम्	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीषु
सम्बोधन	हे बहुश्रेयसि!	हे बहुश्रेयस्यौ!	हे! बहुश्रेयस्यः!

अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः, अतिलक्ष्मीः—लक्ष्मी शब्द ङीबन्त नहीं है क्योंकि लक्ष्मी शब्द चुरादिगणमें पठित **'लक्ष दर्शने अङ्कने च'** 'लक्ष' धातु से **'लक्षेर्मुट् च'** उणादि सूत्र से **इ प्रत्यय** तथा **मुट्** आगम होकर बनता है। लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः, लक्ष्मी का अतिक्रमण करने वाला अर्थात् लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ।

अतिलक्ष्मीः—'अतिलक्ष्मी' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय **अतिलक्ष्मी + सु** अनुबन्ध लोप होकर **अतिलक्ष्मी + स्** इस स्थिति में अपृक्त हल् का लोप न होकर सकार का रुत्व विसर्ग होकर **'अतिलक्ष्मीः'** रूप बनता है। इसके शेष सभी रूप बहुश्रेयसी के समान बनेंगे।

जिस प्रकार बहुश्रेयसी शब्द नदी संज्ञक हो जाता है, उसी प्रकार अतिलक्ष्मी शब्द की भी नदी संज्ञा होती है। लक्ष्मी के समान उणादि 'ई' प्रत्यय से बने हुए दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग अवी आदि शब्दों से भी सु प्रत्यय का लोप न होकर सकार का रुत्व विसर्ग हो जाता है। विसर्ग रूपों का परिगणन निम्नलिखित पद्य में है-

"अवी तन्त्री तरी लक्ष्मी धी ह्री श्रीणामुणादितः।
अपि स्त्रीलिङ्ग वृत्तीनां सोर्लोपो न कदाचनः"।।

अवी (मेंड़) तन्त्री (वीणा) तरी (नौका) धी (बुद्धि) ह्री (लज्जा) श्री (शोभा) और लक्ष्मी ये सात उणादि ईप्रत्ययान्त शब्द है।

अतिलक्ष्मी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिलक्ष्मीः	अतिलक्ष्म्यौ	अतिलक्ष्म्यः
द्वितीया	अतिलक्ष्मीम्	अतिलक्ष्म्यौ	अतिलक्ष्मीन्
तृतीया	अतिलक्ष्म्या	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभिः
चतुर्थी	अतिलक्ष्म्यै	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभ्यः
पञ्चमी	अतिलक्ष्म्याः	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभ्यः
षष्ठी	अतिलक्ष्म्याः	अतिलक्ष्म्योः	अतिलक्ष्मीणाम्
सप्तमी	अतिलक्ष्म्याम्	अतिलक्ष्म्योः	अतिलक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे अतिलक्ष्मि!	हे अतिलक्ष्म्यौ!	हे अतिलक्ष्म्यः!

प्रधीरिति—प्रध्यायतीति प्रधीः। विशेष रूप से चिन्तन करने वाला। प्र उपसर्ग पूर्वक **ध्यै चिन्तायाम्** धातु से '**ध्यायतेः सम्प्रसारणं च**" (वा०) से **क्विप्** प्रत्यय होकर, **य्** को **इ** सम्प्रसारण **प्र ध् इ ऐ** इस स्थिति में **सम्प्रसारणाच्च** से ऐकार का पूर्वरूप तथा **हलश्च** से इकार का दीर्घ होकर **प्रधी** शब्द बनता है।

प्रधीः—'प्रधी' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप **प्रधी + स्** सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **प्रधीः** रूप बनता है।

इयङुवङादेशविधायकं विधि सूत्रम्।

९१. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ।।६।४।७७।।

वृत्ति—श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते।

अर्थ—अजादि प्रत्यय के परे होने पर श्नु प्रत्ययान्त अङ्ग, इवर्णान्त और उवर्णान्त धातु रूप अङ्ग एवं भ्रु रूप अङ्ग के अन्त्य वर्ण इकार और उकार के स्थान पर क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।

व्याख्या—इयङ् और उवङ् आदेशों में 'अ' और 'ङ' इत्संज्ञक है इनका लोप होने पर 'इय्' और 'उव्' शेष बचता है। इसके ङित् होने से '**ङिच्च**' सूत्र के नियम से यह आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान पर ही होता है। अङ्ग संज्ञक शब्द के इकार और ईकार को इयङ् और उकार और ऊकार को उवङ् आदेश होता है।

यण्विधायकं विधिसूत्रम्।

९२. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य।।६।४।८२।।

वृत्ति—धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये परे। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषपपीवत्। एवं ग्रामणीः। ङौ तु ग्रामण्याम्।। अनेकाच् किम्? नीः, नियौ, नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्, नियम। ङेराम्, नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्? सुश्रियौ। यवक्रियौ।

अर्थ—धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं है जिसके, ऐसा जो इवर्णान्त धातु, वह अन्त में हो ऐसे अनेकाच् अङ्ग को यण् होता है अजादि प्रत्यय के परे होने पर।

व्याख्या—अजादि प्रत्यय के परे होने पर अनेकाच् अङ्ग को यण् आदेश होता है, जिसके अन्त में इवर्णान्त धातु हो परन्तु धातु के इवर्ण से पूर्व धातु का अवयव संयोग न हो। यथा—

प्रध्यौ—प्रधी + औ इस स्थिति में यहाँ पर 'धी' धातु है, जो इवर्णान्त है जो 'प्र' के अन्त में है। इवर्ण के पूर्व कोई भी संयोग धातु का अवयव नहीं है, क्योंकि ईकार के पूर्व ध् हल् वर्ण है और ध् के पूर्व 'प्र' उपसर्ग है जो धातु का संयोग नहीं अपितु उपसर्ग का है। प्रधी प्र् अ ध् ई यह अनेकाच् भी है क्योंकि इसमें 'अ' और 'ई' दो अच् है। अजादि प्रत्यय औ परे है, अतः इस सूत्र से प्रधी के अन्त्य वर्ण इकार का यकार आदेश होता है। किन्तु प्रधी + औ इस स्थिति में 'इकोयणचि' से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर प्रथमयोः०—से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था, 'दीर्घाज्जसि च' से उसका निषेध होकर, अचिश्नु०—से इयङ् आदेश था किन्तु उसे बाधकर **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** सूत्र से ईकार को यण् आदेश होकर **प्रध्य्** + **औ** बना। वर्ण सम्मेलन होने पर '**प्रध्यौ**' सिद्ध हुआ

प्रध्यः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **प्रधी** + **अस्** इस स्थिति में पूर्ववत् पूर्वसवर्ण दीर्घ, इकोयणचि से यण् और इयङ् को बाधकर उक्त सूत्र से ईकार को यण् (य्) आदेश और सकार का रुत्व विसर्ग होकर "**प्रध्यः**" रूप बनता है।

प्रध्यम्—प्रधी + अम् इस स्थिति में 'अमिपूर्वः' से प्राप्त पूर्व रूप को बाधकर अचिश्नु०—से प्राप्त इयङ् को बाधकर '**एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य**' से ईकार का यकार आदेश होकर '**प्रध्यम्**' रूप बनता है।

प्रध्यौ—प्रथमा द्विवचन के समान ही द्वितीया द्विवचन में भी **प्रध्यौ** रूप की सिद्धि होगी।

प्रध्यः—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **प्रधी** + **अस्** में प्रथमा बहुवचन के समान ही **प्रध्यः** रूप बनता है।

प्रध्यि—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **प्रधी** + **ई** इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ को बाधकर, इयङ् को बाधकर **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** सूत्र से ईकार का यण् (य्) होकर **प्रध्य्** + **इ** बना। वर्ण सम्मेलन करके '**प्रध्यि**' रूप बनता है।

शेषमिति—प्रधी शब्द के शेष रूप पपीवत् ही बनेंगे।

प्रधी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वितीया	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृतीया	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
चतुर्थी	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
पञ्चमी	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
षष्ठी	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
सप्तमी	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु
सम्बोधन	हे प्रधीः!	हे प्रध्यौ!	हे प्रध्यः!

एवमिति—इसी प्रकार ग्रामणी शब्द के रूप भी होते हैं किन्तु ग्राम + नी = ग्रामणी में नी शब्द होने के कारण सप्तमी एकवचन के ङि प्रत्यय में **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् ओदश होता है, यण् होकर '**ग्रामण्याम्**' रूप सिद्ध होता है।

'**ग्रामं नयति इति ग्रामणीः**' (गाँव का नेता) यहाँ ग्राम पूर्वक 'नी' धातु से 'अग्रग्रामाभ्यां नयते' से णकार होकर ग्रामणी, अग्रणी आदि रूप बनते हैं।

अनेकाच् इति—'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' सूत्र में अङ्ग को अनेकाच् होना चाहिए ऐसा कहने का अर्थ है कि एकाच् अर्थात् 'नी' में यण् का न होना, यदि सूत्र में अनेकाच् न कहा जाता तो एकाच् नी शब्द में भी यण् होने लगता, अनेकाच् ग्रहण से नी में यण् न होकर इयङ् होगा।

नीः—'नी' शब्द से प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **नी + स्**। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर '**नीः**' रूप बनता है।

नियौ—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय **नी + औ** इस स्थिति में 'इकोयणचि' से यण् को बाधकर, पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है, दीर्घाज्जसि से इसका निषेध होने पर **अचिश्नु०** सूत्र से ईकार को इयङ् आदेश होकर **न् + इयङ् + औ** अनुबन्ध लोप होकर **न् + इय् + औ** बना वर्ण सम्मेलन करने पर '**नयौ**' रूप बनता है।

नियः—बहुवचन में नी + जस् अनुबन्ध लोप, नी + अस्, ईकार का इयङ् आदेश, अनुबन्ध लोप **न् + इय् + अस्** में सकार का रुत्व विसर्ग होकर '**नियः**' रूप बनता है। द्वितीया बहुवचन में भी इसी प्रकार **नियः** रूप बनता है।

नियम्—नी + अम् इस स्थिति में पूर्वरूप एकादेश को बाधकर ईकार को इयङ् आदेश होकर '**नियम्**' रूप बनता है।

ङेरामिति—'नी' शब्द से सप्तमी एकवचन में **ङि** प्रत्यय '**नी + ङि**' इस स्थिति में **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** सूत्र से ङि के स्थान पर आम् आदेश, **अचिश्नु०**—से इयङ् होकर **नियाम्** रूप बनता है।

ईकारान्त एकाच्—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नी:	नियौ	निय:
द्वितीया	नियम्	नियौ	निय:
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभि:
चतुर्थी	निये	नीभ्याम्	नीभ्य:
पञ्चमी	निय:	नीभ्याम्	नीभ्य:
षष्ठी	निय:	नियो:	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	नियो:	नीषु
सम्बोधन	हे नी:!	हे नियौ!	हे निय:!

असंयोगपूर्वस्येति—सूत्र में इवर्ण के पूर्व संयोग नहीं होना चाहिए ऐसा क्यों कहा है ? तो इसका फल है—**सुश्रियौ** और **यवक्रियौ** में यण् न होना। इन दोनों में ईकार से पूर्व संयोग है **यथा**—सुश्री और यवक्री इन दोनों में श्री (श् र्) और क्री (क् र्) में ईकार के पूर्व संयोग होने से यण् न होकर इयङ् आदेश होता है।

सुष्ठु श्रयतीति सुश्री:। अच्छी तरह से आश्रय लेने वाला। सुपूर्वक **'श्रिञ् सेवायाम्'** धातु से क्विप् प्रत्यय और दीर्घ होकर सुश्री बना। स्त्रीत्व के अभाव में नदीसंज्ञा और सु का लोप नहीं होता है।

ईकारान्त अनेकाच्, सुश्री—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुश्री:	सुश्रियौ	सुश्रिय:
द्वितीया	सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रिय:
तृतीया	सुश्रिया	सुश्रिभ्याम्	सुश्रीभि:
चतुर्थी	सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्य:
पञ्चमी	सुश्रिय:	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्य:
षष्ठी	सुश्रिय:	सुश्रियो:	सुश्रियाम्
सप्तमी	सुश्रियि	सुश्रियो:	सुश्रीषु
सम्बोधन	हे सुश्री:!	हे सुश्रियौ!	हे सुश्रिय:!

इसी प्रकार **यवं क्रीणातीति यवक्री:**। यव पूर्वक क्री धातु है। यवक्री के रूप सुश्री के समान बनेंगे।

गतिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

९३. गतिश्च।।१।४।६०।।

वृत्ति—प्रादय: क्रियायोगे गति संज्ञा स्यु:।

(वा०)—गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। शुद्धधियौ।

अर्थ– प्र, परा आदि क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।

व्याख्या–प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप ये प्रादयः अर्थात् प्रादि २२ उपसर्ग होते है। **उपसर्गाः क्रियायोगे** सूत्र से इनकी उपसर्ग संज्ञा बतलाई गई है, इन्हीं की उक्त सूत्र से गतिसंज्ञा भी होती है। गतिसंज्ञा के अनेक प्रयोजन हैं किन्तु इस प्रकरण में वार्तिक सूत्रमें गति क्या है इसके लिए गतिसंज्ञा जानना आवश्यक है।

वा०–गतिकारकेति०–जिस शब्द का पूर्वपद गतिसंज्ञक या कारक से भिन्न हो, उसके **ऐरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् नहीं होता है। अर्थात् गतिसंज्ञक और कारक पूर्व पद में रहने पर तो यण् होगा, किन्तु इनसे भिन्न शब्दों के पूर्व पद में रहने पर यण् नहीं होगा।

यथा–शुद्धा धीर्यस्य सः इस विग्रह से बने हुए **शुद्धधी** शब्द में यण् नहीं होगा, क्योंकि यहाँ शुद्ध न तो गतिसंज्ञक है और न कारक है, अतः यहाँ इयङ् आदेश होगा।

शुद्धधियौ–'शुद्धधी + औ' यहाँ पर 'शुद्धा' पूर्व पद है और 'धी' उत्तर पद है। 'शुद्धा' न तो गतिसंज्ञक है और न कारक है अपितु 'धी' का विशेषण है। अतः यहाँ पर उक्त सूत्र के बल से यण् न होकर इयङ् आदेश होकर '**शुद्धधियौ**' रूप बनता है।

इस शब्द के सभी रूप 'सुश्री' शब्द के समान बनेंगे।

यण् निषेधकं विधि सूत्रम्।

९४. न भूसुधियोः।।६।४।८५।।

वृत्ति–एतयोरचित सुपि यणन। सुधियौ। सुधियः इत्यादि।

सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतमिच्छतीति सुतीः। सुख्यौ। सुत्यौ

सुख्युः। सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः।

अर्थ–अजादि सुप् प्रत्यय के परे रहते 'भू' और 'सुधी' शब्द को यण् न हो।

व्याख्या–यह सूत्र अजादि सुप् के परे होने पर यण् का निषेध करता है। यह 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' और 'ओः सुपि' का निषेधक है। 'भू' और 'धी' असंयोगपूर्व और इकारान्त तथा उकारान्त धातु है। यहाँ पर **अचि श्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ** से 'इयङ्' और उवङ् होंगे। **यथा**–

सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः। श्रेष्ठ चिन्तन करने वाला। 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'ध्यै' चिन्तायाम् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर तथा सम्प्रसारण होकर 'सुधी' शब्द बनता है।

सुधीः–'सुधी' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्धन लोप होकर **सुधी + स्** बना। ङयन्त न होने से सु का लोप न होकर रुत्व-विसर्ग होकर **सुधीः रूप** बनता है।

सुधियौ–सुधी + औ मे 'इकोयणचि' यण् प्राप्त उसे बाधकर, **अचिश्नुधातु०**–से इयङ् प्राप्त, उसे भी बाधकर, **एरनेकाचो०** से यण् प्राप्त उसका **न भू सुधियोः** से निषेध होकर **अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् हुआ, अनुबन्ध लोप होकर **सुध् + इय् + औ** बना। वर्णसम्मेलन कर **सुधियौ** रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार 'सुधी' शब्द से सम्पूर्ण रूप 'सुश्री' के समान बनेंगे।

सुधी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधी!	हे सुधियौ!	हे सुधियः!

सुखमिच्छतिति सुखीः। सुख चाहने वाला। **सुख-शब्द** से **नामधातु प्रकरण** में क्यच् प्रत्यय, 'क्विप् च' से क्विप् प्रत्यय, 'क्यचि च' से ई होकर 'सुखी' और 'सुती' शब्द बनते हैं, अतः ये ङ्यन्त नहीं है। **यथा**—

सुखीः—'सुखी' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **सुखी** + स् बना। सकार का रुत्व-विसर्ग और वर्णसम्मेलन के '**सुखीः**' रूप बनता है। इसी प्रकार '**सुतीः**' रूप बनता है।

सुख्यौ, सुत्यौ—सुखी + औ और सुती + औ इस स्थिति में दोनों में **एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य** सूत्र से यण् होकर **सुख्य्** + **औ** और **सुत्य्** + **औ** बना। वर्ण सम्मेलन करके **सुख्यौ और सुत्यौ**, रूप बनते हैं।

सुख्युः, सुत्युः—सुखी + ङसि और सुती + ङसि इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर **सुखी** + **अस्** और **सुती** + **अस्** बना। **एरनेकाचो०** सूत्र से यण् होकर **सुख्य्** + **अस्** बना। इस स्थिति में **ख्यत्यात्परस्य** से प्रत्यय के अकार का उकार आदेश और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में **सुख्युः** और **सुत्युः** रूप बनते हैं।

शेषमिति—'सुखी' और 'सुती' शब्दों के शेष रूप 'प्रधी' शब्द के समान बनते हैं।

सुखी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुखीः	सुख्यौ	सुख्यः
द्वितीया	सुख्यम्	सुख्यौ	सुख्यः
तृतीया	सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः
चतुर्थी	सुख्ये	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः

पञ्चमी	सुख्युः	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः
षष्ठी	सुख्युः	सुख्योः	सुख्याम्
सप्तमी	सुख्यि	सुख्योः	सुखीषु
सम्बोधन	हे सुखीः!	हे सुख्यौ!	हे सुख्यः!

।।दीर्घ ईकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द समाप्त।।

ह्रस्व उकारान्त शब्द

शम्भुरिति—शम्भु (शिव) शब्द के रूप हरि शब्द के समान बनते हैं। शम्भु शब्द ह्रस्व उकारान्त है, अतः **'शेषोघ्यसखि'** से इसकी घि संज्ञा होकर हरिवत् वे सभी गुणकार्य होंगे। किन्तु हरि इकारान्त है और शम्भु उकारान्त, अतः इकार का गुण एकार होगा और उकार का गुण ओकार होगा। सप्तमी एकवचन में 'हरौ' के समान 'शम्भौ' और सम्बोधन में 'हे हरे'! के समान 'हे शम्भो!' रूप बनते हैं।

शम्भु—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
द्वितीया	शम्भुम्	शम्भू	शम्भून्
तृतीया	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
चतुर्थी	शम्भवे	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
पञ्चमी	शम्भोः	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
षष्ठी	शम्भोः	शम्भवोः	शम्भूनाम्
सप्तमी	शम्भौ	शम्भवोः	शम्भुषु
सम्बोधन	हे शम्भो!	हे शम्भू!	हे शम्भवः!

एवमिति—भानु (सूर्य) आदि ह्रस्व उकारान्त शब्दों के रूप शम्भु शब्द के समान ही बनेंगे।

तृज्वद्विधायकमतिदेशसूत्रम्।

९५. तृज्वत् क्रोष्टुः।।७।१।९५।।

वृत्ति—असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे।

क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः।

अर्थ—सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनाम स्थान के परे होने पर क्रोष्टु-शब्द को तृज्वद्भाव होता है अर्थात् क्रोष्टु के स्थान पर क्रोष्टृ आदेश होता है।

व्याख्या—कृदन्तप्रकरण में तृच् प्रत्यय होता है जिसका प्रयोग धातुओं में होता है। **यथा**—कृ धातु से तृच् होकर कर्तृ आदि बनते है। इस सूत्र से भी सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम स्थान संज्ञक प्रत्ययों—सु, औ, जस्, अम्, औट्, के परे रहते उकारान्त क्रोष्टु शब्द तृजन्त होने पर क्रोष्टृ बन जाता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्।

९६. ऋतो ङिसर्वनामस्थानयो।।७।३।११०।।

वृत्ति—ऋतोऽङ्गस्य गुणौ ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते।

अर्थ और व्याख्या—ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग को ङि प्रत्यय और सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्ययों के परे रहते गुण हो जाता है। इस सूत्र से जब गुण होता है तो 'उरण रपरः' से रपर हो जाता है, किन्तु सु प्रत्यय के परे रहते इस सूत्र का प्रयोग नहीं होता।

अनङादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

९७. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च।।७।१।९४।।

वृत्ति—ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ।

अर्थ—ऋदन्त, उशनस्, पुरुदंसस् और अनेहस् इन शब्दों को अनङ् आदेश हो, सम्बुद्धिभिन्न सु के परे रहते।

व्याख्या—ह्रस्व ऋकारान्त, उशनस् (शुक्राचार्य) पुरुदंसस् (बिल्ली) और अनेहस् (समय) इन शब्दों में यदि सम्बुद्धि से भिन्न सु प्रत्यय परे होता है तो अनङ् आदेश होता है। अनङ् ङित् है अतः यह आदेश इन शब्दों के अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्।

९८. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्।।६।४।११।।

वृत्ति—आबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टून्।

अर्थ—अप् शब्द, तृन्प्रत्ययान्त, तृच् प्रत्ययान्त शब्द तथा स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षतृ, होतृ और प्रशास्तृ शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थानके परे होने पर।

व्याख्या—अप् (जल) तृन् (तृन् प्रत्ययान्त शब्द) तृच् (तृच् प्रत्ययान्त शब्द) स्वसृ (बहिन) नप्तृ (नाती) नेष्टृ (दानी) त्वष्टृ (त्वष्टा नामक असुर) क्षतृ (द्वारपाल) होतृ (यजमान) पोतृ (पवित्र करने वाला) प्रशास्तृ (शासन करने वाला) इन शब्दों की उपधा को सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्ययों के परे होने पर दीर्घ हो जाता है।

क्रोष्टा—क्रोष्टु-शब्द ऋकारान्त है। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **क्रोष्टु + स्** बना। **सुडनपुंसकस्य** से सु की सर्वनामस्थान संज्ञा होकर **तृज्वत् क्रोष्टुः** से क्रोष्टु के स्थान पर क्रोष्टृ आदेश **क्रोष्टृ + स्** बना। **ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः** से ऋकार को गुण की प्राप्ति थी किन्तु **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** सूत्र से पूर्व सूत्र का बाध होकर अनङ् आदेश **ङिच्च** सूत्र के नियम से यह अनङ् ऋकार के स्थान पर हुआ **क्रोष्ट् + अनङ् + स्** अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टन् + स्** बना। **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से टकार के अकार की उपधा संज्ञा होकर '**अप्तृन्तृस्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्**' सूत्र से उपधा (अर्थात् न् के पूर्व अ) का दीर्घ होकर **क्रोष्टान् + स्** बना। इस स्थिति में '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्**' से सकार का लोप और '**न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' से नकार का लोप होकर '**क्रोष्टा**' रूप सिद्ध होता है।

क्रोष्टारौ—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय, 'क्रोष्टृ + औ इस स्थिति में सर्वनामस्थान प्रत्यय के परे रहते '**ऋतोङि०**' सूत्र से गुण और रपर होकर **क्रोष्टर् + औ** अब **अप्तृन्तृच०**—सूत्र से उपधा को दीर्घ होकर '**क्रोष्टारौ**' रूप बनता है।

क्रोष्टारः—जस् प्रत्यय परे, अनुबन्धन लोप **क्रोष्टृ + अस्** इस स्थिति में **ऋतोङि०**—से गुण और रपर **क्रोष्ट् + अर् + अस्** बना। उपधा को दीर्घ होकर और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **क्रोष्टारः** रूप बनता है।

क्रोष्टारम्—'क्रोष्टृ + अम्' इस स्थिति में गुण, दीर्घ होकर '**क्रोष्टारम्**' रूप बनता है।

क्रोष्टून्—द्वितीया के बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टु + अस्** बना। **सर्वनामस्थान** न होने से तृज्वद्भाव न होकर **प्रथमयोः पूर्व सवर्णः** से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर **क्रोष्टूस्** बना। '**तस्माच्छसो नः पुंसि**' से सकार का नकार आदेश होकर '**क्रोटून्**' बनता है।

वैकल्पिकतृज्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्।

९९. विभाषा तृतीयादिष्वचि।।७।१।९७।।

वृत्ति—अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्ट्रे।

अर्थ—क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव (क्रोष्टृ आदेश) हो विकल्प से, तृतीयादि आजादि विभक्ति परे रहते।

व्याख्या—तृतीयादि अजादि विभक्ति है—**टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस् आम्, ङि ओस्**। केवल इन्हीं प्रत्ययों के परे रहते इस सूत्र से विकल्प से तृज्वद्भाव होता है, अन्यत्र नहीं होता। तृज्वद्भाव का अर्थ है क्रोष्टु के स्थान पर क्रोष्टृ (अर्थात् उकार के स्थान पर ऋकार) हो जाना। इस आदेश के न होने पर उकारान्त 'भानु' शब्द के समान रूप बनते है।

क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना—क्रोष्टु से तृतीया एकवचन में टा, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टु + आ** बना। '**विभाषा तृतीयादिष्वचि**' से विकल्प से **क्रोष्टृ आदेश' क्रोष्टृ + आ** बना। **इकोयणचि** से ऋकार का यण् र् होकर **क्रोष्ट्र् + आ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **क्रोष्ट्रा** रूप बनता है।

क्रोष्टृ आदेश न होने पर **उकारान्त** क्रोष्टु की भानुवत् **घिसंज्ञा** होकर **आङो नाऽस्त्रियाम्** से ना आदेश होकर **क्रोष्टुना** रूप बनेगा।

क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभिः। क्रोष्टुभ्यः। क्रोष्टुभ्याम् में केवल भ्याम् प्रत्यय को जोड़ना है। भिस् और भ्यस् प्रत्यय में सकार का रुत्वविसर्ग हो जाता है और **क्रोष्टुभ्याम्, क्रोटुभिः, क्रोष्टुभ्यः** बनते हैं।

क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे—'क्रोष्टु' से चतुर्थी के एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **क्रोष्टु + ए** बना। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से विकल्प से **क्रोष्टृ** आदेश। '**इकोयणचि**' से ऋकार के स्थान पर यण् (र्) आदेश। वर्ण सम्मेलन कर '**क्रोष्ट्रे**' सिद्ध होता है। **क्रोष्टृ** के अभाव में क्रोष्टु में भानुवत् घिसंज्ञा होकर **घेर्ङिति** से गुण करके 'अव्' आदेश होने पर **क्रोष्ट् + अव् + ए** का वर्ण सम्मेलन करने पर 'क्रोष्टवे' रूप बनता है।

उदेकादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१००. ऋत उत्।।६।१।१११।।

वृत्ति—ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः। रपरः।

अर्थ—ह्रस्व ऋकार से ङसि और ङस् सम्बन्धी अकार के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

व्याख्या—पूर्व में ह्रस्व ऋकार हो, उसके परे ङसि और ङस् प्रत्यय का अकार हो तो पूर्व और पर के स्थान पर उकार एकादेश होता है। ऋकार के स्थान पर उकार आदेश होने पर **उरण रपरः** से रपर होकर उर् हो जाता है।

सलोपबिषये नियमसूत्रम्।

१०१. रात्सस्य।।८।२।२४।।

वृत्ति—रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः २। क्रोष्टोः २।

अर्थ—रेफ से परे यदि संयोगान्तलोप हो तो सकार का ही हो, अन्य का न हो।

व्याख्या—रेफ अर्थात् रकार के परे सकार हो और दोनों में संयोगान्त हो तो इस सूत्र से केवल सकार का ही लोप होता है। किसी अन्य वर्ण का नहीं; **यथा**—क्रोष्टुर् + स् में र् के बाद स् है, अतः प्रकृत सूत्र से संयोगान्त स् का लोप हो जाता है।

क्रोष्टुः—पञ्चमी के एकवचन में ङसि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **क्रोष्टु + अस्** बना। **विभाषा०**—से वैकल्पिक 'क्रोष्टृ' आदेश, **क्रोष्टृ + अस्** बना। यण् प्राप्त था किन्तु उसका बाध होकर '**ऋत उत्**' से रपर **उर्** होकर **क्रोष्ट् + उर् + स्** अर्थात् **क्रोष्टुर् स्** बना। संयोगान्त स् का प्रकृत सूत्र से लोप और रकार का विसर्ग होकर **क्रोष्टुः** सिद्ध होता है। षष्ठी के एकवचन में भी **क्रोष्टुः** ही बनता है। विकल्प के अभाव पक्ष में भानोः के समान **क्रोष्टोः** बनेगा।

क्रोष्ट्रोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय **क्रोष्टु + ओस्** बना। **विभाषा०**—से विकल्प से 'क्रोष्टृ' आदेश हुआ, **क्रोष्टृ + ओस्** बना 'इकोयणचि्' सूत्र से ऋकार का यण् होकर क्रोष्ट्र् + ओस् बना। वर्ण सम्मेलन कर **क्रोष्ट्रोस्** में सकार का रुत्व विसर्ग होकर **क्रोष्ट्रोः** सिद्ध होता है। क्रोष्टृ के अभाव पक्ष में **भान्वोः** के समान गुण, अव् आदेश और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **क्रोष्ट् + अव् + ओः** वर्ण सम्मेलन कर **क्रोष्ट्वोः** रूप बनेगा।

वार्तिकम्—नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन।

वृत्ति—क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत्। हूहूः। हूह्वौ। हूहवः। हूहूम् इत्यादि। अतिचमूशब्देतु नदी कार्यं विशेषः। हे अतिचमू। अतिचम्वै। अतिचम्वाः। अतिचमूनाम्। खलपूः।

अर्थ—यह वर्तिक सूत्र है। पूर्वविप्रतिषेध के कारण प्राप्त नुम्, अच् परे होने पर रेफादेश और तृज्वद्भाव से पूर्व नुट् होता है।

व्याख्या—(नुम् अचिर तृज्वद्भावेभ्यः नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) अर्थात् नुम् (इकोऽचि विभक्तौ से विधीयमान नुम्) अचिरभाव (अचिर ऋतः) अच् परे रहते रेफ आदेश और तृज्वद्भाव (तृज्वत्क्रोष्टुः) इन तीनों की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से पहले आम् प्रत्यय को नुट् का आगम होता है। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** सूत्र कहता है कि एक स्थान पर तुल्यबल विरोध वाले दो सूत्र प्रवृत्त हो रहे हो तो पूर्व सूत्र का निषेध और पर सूत्र की प्रवृत्ति होनी चाहिए। इस नियम से नुट् का आगम हो जाता है।

क्रोष्टूनाम्—षष्ठी के बहुवचन में आम् प्रत्यय क्रोष्टु + आम् इस स्थिति में '**विभाषा तृतीया०**—से तृज्वद्भाव और 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट का आगम एक साथ प्राप्त, '**विप्रतिषेधे परं कार्यम्**' के नियम से '**नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्व विप्रतिषेधेन**' इस वार्तिक से पहले 'नुट्' का आगम हुआ, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टु + नाम्** बना। '**नामि**' सूत्र से दीर्घ होकर '**क्रोष्टूनाम्**' सिद्ध होता है।

क्रोष्टरि—सप्तमी एक वचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टु + इ** बना। **विभाषा तृतीया०**—से विकल्प से क्रोष्टृ आदेश हुआ **क्रोष्टृ + इ** बना। **ऋतो ङि सर्वनाम०**—से गुण और रपर होकर **क्रोष्टर् + ई** बना। वर्णसम्मेलन करने पर '**क्रोष्टरि**' रूप सिद्ध होता है। **क्रोष्टृ** आदेश के अभाव में भानौ के समान '**क्रोष्टौ**' रूप बनता है।

क्रोष्टृ आदेश के अभाव में तथा हलादि विभक्तियों में क्रोष्टु शब्द के रूप शम्भुवत् और भानुवत् बनेंगे।

क्रोष्टु—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रो, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रो, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु
सम्बोधन	हे क्रोष्टो!	हे क्रोष्टारौ!	हे क्रोष्टारः!

।।ह्रस्व उकारान्त शब्द समाप्त।।

दीर्घ ऊकारान्त शब्द

हूहू शब्द गन्धर्व विशेष का वाचक है, तथा दीर्घ ऊकारान्त है। इसकी नदीसंज्ञा और घिसंज्ञा नहीं होती है।

हूहूः—'हूहू' शब्द से प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर '**हूहूः**' रूप सिद्ध होता है।

हूह्वौ—द्विवचन में औ प्रत्यय **हूहू** + **औ** इस स्थिति में '**इकोयणचि**' सूत्र से ऊकार का वकार होकर '**हूह्वौ**' रूप बनता है।

हूह्वः—बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **हूहू** + **अस्** में ऊकार का यण वकार होकर और सकार को रुत्व-विसर्ग होकर '**हूह्वः**' रूप बनता है।

इस शब्द के सभी रूपों में अजादि विभक्ति में यण्, औ, जस् में 'दीर्घाज्जसि च' से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध, अम् में पूर्वरूप, और शस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ सु अर्थात् स् का रुत्वविसर्ग करके सिद्ध हो जाते हैं।

हूहू—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हूहूः	हूह्वौ	हूह्वः
द्वितीया	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्
तृतीया	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
चतुर्थी	हूह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पञ्चमी	हूह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
षष्ठी	हूह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
सप्तमी	हू ह्वि	हूह्वोः	हूहूषु
सम्बोधन	हे हूहूः!	हे हूह्वौ!	हे हूह्वः!

अतिचमूशब्दे तु नदी कार्यं विशेषः। चमू शब्द ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग है और सेना का वाचक है। 'चमूम् अतिक्रान्तः' विग्रह में समास होकर 'अतिचमू' शब्द बना, जिसका अर्थ है सेना का अतिक्रमण करने वाला कोई पुरुष योद्धा आदि। इस शब्द के रूपों की सिद्धि में नदी संज्ञा का कार्य अधिक होता है। नदीसंज्ञा कार्य स्थल को छोड़कर शेष स्थलों पर इसके रूप हूहू शब्दवत् बनते हैं।

अतिचमूः—'अतिचमू' शब्द से प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप और सकार का रुत्वविसर्ग होकर **अतिचमूः** रूप बनता है।

इसी प्रकार हूहूवत् द्विवचन और बहुवचन में भी **अतिचम्वौ, अतिचम्वः** रूप बनेंगे।

हे अतिचमु!—सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू** + **स्** इस स्थिति में 'नदी' संज्ञक 'अतिचमू' के परे सु प्रत्यय होने **पर अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से ऊकार का ह्रस्व होकर **अतिचमु** + **स्** में **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे** से सकार का लोप हो जाता है। '**हे**' का पूर्व प्रयोग करके '**हे अतिचमु**' रूप बनता है।

द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के द्विवचन और बहुवचन के समान ही रूप बनेंगे, केवल हे का पूर्वप्रयोग होता हैं

अतिचम्वै—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू** + ए बना। इस स्थिति में नदीसंज्ञक 'अतिचमू' शब्द से ङित् परे होने पर **आणनद्याः** से

'**आट्**' का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू + आ + ए** इस स्थिति में '**आटश्च**'
सूत्र से आ + ए को ऐ वृद्धि आदेश और '**इकोयणचि**' सूत्र से ऊकार को यण् वकार
आदेश होकर वर्ण सम्मेलन कर '**अतिचम्वै**' रूप बनता है।

अतिचम्वाः—पञ्चमी एवं षष्ठी विभक्ति के एकवचन में 'ङसि' और ङस्
प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू + अस्** बना। **आण्नद्याः** से अतिचमू के आगे
'आट्' का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू + आ + अस्** बना। '**आटश्च**' से वृद्धि
एकादेश **अतिचमू + आ + स्, इकोयणचि** से ऊकार का यण् वकार आदेश **अतिचम्व्**
+ आ + स्, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और वर्णसम्मेलन कर '**अतिचम्वाः**' रूप
सिद्ध होता है।

अतिचम्वाम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय **अतिचमू + ङि** इस स्थिति में
ङेराम्नद्याम्नीभ्यः से ङि के स्थान पर 'आम्' आदेश **अतिचमू + आम्**। '**आण्नद्याः**'
से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **अतिचमू + आ + आम्, आटश्च** से वृद्धि
एकादेश, ऊकार का यण् (वकार) होकर '**अतिचम्वाम्**' रूप सिद्ध होता है।

अतिचमूनाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय, नुट् का आगम **नामि** से दीर्घ होकर
अतिचमूनाम् रूप बनता है।

अतिचमू—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः
द्वितीया	अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्
तृतीया	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभिः
चतुर्थी	अतिचम्वै	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
पञ्चमी	अतिचम्वाः	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
षष्ठी	अतिचम्वाः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्
सप्तमी	अतिचम्वाम्	अतिचम्वोः	अतिचमूषु
सम्बोधन	हे अतिचमु !	हे अतिचम्वौ !	हे अतिचम्वः !

खलपूः—खलं पुनाति मार्जयति इति **खलपूः**। 'खल' पूर्वक 'पू' धातु से 'खलपू'
बना। 'खलपू' शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **खलपू + स्**
बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **खलपूः** रूप सिद्ध होता है।

यण् विधायकं विधि सूत्रम्।

१०२. ओः सुपि।।६।४।८३।।

**वृत्ति—धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तत-
स्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः।
स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः।**

अर्थ—धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसको यण् हो अजादि सुप् परे रहते।

व्याख्या—इस सूत्र से अजादि प्रत्यय के परे होने पर धातु अवयव के उवर्ण में कोई संयोगसंज्ञा वर्ण न हो, ऐसा जो अनेकाच् अङ्ग (उसके अन्त्य वर्ण को) यण् होता है। **यथा**—खलपू में ऊकार शब्द से पूर्व को धातु का अवयव संयोग नहीं है, यह अनेकाच् है (अर्थात् इसमें अनेक अच् है—ख् अ ल् अ प् ऊ) और इसके परे अजादि प्रत्यय होने पर यण् हो जाता है।

खलप्वौ—खलपू + औ प्रथमा द्विवचन में, प्रथ्यौवत् बाध्य-बाधक भाव होकर **'ओः सुपि'** से यण् होकर ऊकार का वकार हो जाता है **खलप्व्** + **औ** बनता है। वर्ण सम्मेलन कर **'खलप्वौ'** रूप सिद्ध होता है।

खलप्वः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर खलपू + अस् बना। इस स्थिति में **ओः सुपि** से यण् अर्थात् ऊकार का वकार **खलप्व्** + **अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **खलप्वः** रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार अजादि विभक्तियों में यण् होकर सारे रूप बनेंगे और हलादि विभक्तियों में कोई विशेष कार्य नहीं होगा।

एवमिति—खलपूः के समान ही 'सुष्ठु लुनातीति सुलूः।' अच्छी तहर काटने वाला। सुलू शब्द के रूप बनेंगे।

खलपू—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
द्वितीया	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृतीया	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
चतुर्थी	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पञ्चमी	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
षष्ठी	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
सप्तमी	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
सम्बोधन	हे खलपूः!	हे खलप्वौ!	हे खल्वः!

स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः—स्वयं भवति, स्वस्माद्भवतीति स्वभूः। ब्रह्मा। स्वभूः में ङ्यन्त नहीं है, नित्यस्त्रीलिङ्ग भी नहीं है, अतः सु का लोप नहीं होगा तथा नदीसंज्ञा भी नहीं होगी। सु का रुत्व विसर्ग होकर **स्वभूः** रूप बनता है।

अजादि विभक्ति के परे होने पर **इकोयणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर उवङ् प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर **'ओः सुपि'** से यण् प्राप्त था, **न भूसुधियोः** से निषेध होकर **अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होकर **स्वभुवौ, स्वभुवः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

स्वभू—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः
द्वितीया	स्वभुवम्	स्वभुवौ	स्वभुवः
तृतीया	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
चतुर्थी	स्वभुवे	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्य
पञ्चमी	स्वभुवः	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः
षष्ठी	स्वभुवः	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
सप्तमी	स्वभुवि	स्वभूवोः	स्वभूषु
सम्बोधन	हे स्वभूः!	हे स्वभूवौ!	हे स्वभुवः!

वर्षाभूः—वर्षासु भवतीति वर्षाभूः। वर्षा काल में होने वाला मेंढक 'वर्षा' पूर्वक, भू-धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप होकर 'वर्षाभू' बना प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, रुत्व-विसर्ग होकर वर्षाभूः बना।

यण् विधायकं विधिसूत्रम्।

१०३. वर्षाभ्वश्च।।६।४।८४।।

वृत्ति—अस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः।

अर्थ—अजादि सुप् के परे होने पर वर्षाभू शब्द को यण् होता है।

व्याख्या—अजादि विभक्ति परे हो उसके पूर्व वर्षाभू शब्द हो तो इस सूत्र से यण् आदेश होता है। अर्थात् ऊकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

वर्षाभ्वौ—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय होकर **वर्षाभू + औ** बना। फिर '**इकोयणचि**' सूत्र से लेकर '**न भूसुधियोः**' तक बाध्य बाधक भाव होकर अन्ततः **वर्षाभ्वश्च** सूत्र से यण् अर्थात् ऊकार का वकार आदेश होकर '**वर्षाभ्वौ**' रूप बनता है।

इस प्रकार से 'वर्षाभू' में अजादि विभक्ति के परे होने पर **वर्षाभ्वश्च** से ही यण् होगा और हलादि विभक्ति में कोई विशेष कार्य नहीं होगा। इसके रूप '**खलपू**' के समान ही बनेंगे।

वार्तिकम्—दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवोयण् वक्तव्यः।

दृन्भ्वौ। एवं करभूः। धाता। हे धातः। धातारौ। धातारः।

अर्थ—दृन्करपुनः अर्थात् दृन्, कर और पुनर् पूर्वक भू धातु को यण् हो अजादि सुप् के परे होने पर।

व्याख्या—दृन्, कर, पुनर् पूर्वक भू धातू में **न भूसुधियोः** से निषेध प्राप्त था। इस वार्तिक सूत्र से भू के ऊकार का यण् आदेश होता है। इसके रूप वर्षाभू के समान ही बनते हैं। **यथा—दृन्भूः दृन्भ्वौ, दृन्भ्वः** आदि। इसी प्रकार **करभू** 'करे भवति' हाथ में

होने वाले नाखून आदि अर्थ में। **करभूः, करभ्वौ करभ्वः** तथा '**पुनर्भवति**' पुनः होता है अर्थ में **पुनर्भूः, पुनर्भ्वौ, पुनर्भ्वः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

दृन्भूः—'दृन्' अव्यय है और 'भू' धातु है। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर दृन्भूः रूप सिद्ध होता है।

दृन्भ्वौ—प्रथमा द्विवचन में '**औ**' **प्रत्यय, दृन्भू + औ,** इस स्थिति में बाध्य-बाधक भाव होकर '**दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः**' इस वार्तिक सूत्र से ऊकार का यण् (वकार) होकर **दृन्भ्वौ** रूप बनता है। इसके शेष रूप '**वर्षाभू**' के समान ही बनेंगे।

।।दीर्घ ऊकारान्त शब्द समाप्त।।

ऋकारान्त शब्द

वार्तिकम्—ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। धातृणाम्। एवं नप्त्रादयः।
नप्त्रादिग्रहणम् व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न-पिता।
पितरौ। पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत्। एवं जामात्रादयः।
ना। नरौ।

धाता—धारण, पोषण करने वाला, विधाता, ब्रह्मा। **डुधाञ्** धातु से 'तृन्' या 'तृच्' प्रत्यय से '**धातृ**' शब्द बनता है। 'धातृ' शब्द से प्रथमा एक वचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **धातृ + स्** बना। '**ऋदुशनस्पुरूदंसोऽनेहसां च**' सूत्र से धातृ के ऋकार को 'अनङ्' आदेश, अनुबन्ध लोप होकर अन्, **धात् + अन् + स्** बना। **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृ नेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से उपधा को दीर्घ हुआ **धातान् + स्** बना। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्पृक्तं** हल् से सकार का लोप होकर **धातान्** इस स्थिति में **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर '**धाता**' रूप सिद्ध होता है।

धातारौ—'धातृ' शब्द से प्रथमा **द्विवचन** में औ प्रत्यय **धात् + औ** बना। **ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः** से ऋकार को गुणादेश, रपर होकर **धातर् + औ** बना। तकार की उपधा संज्ञा होकर **अप्तृन्तृच्०**—से उपधा को दीर्घ होकर **धातार् + औ** बना। वर्णसम्मेलन कर **धातारौ** रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार **धातारः, धातारम्, धातारौ** में क्रमशः जस्, अम्, औट् प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध होते हैं।

धातॄन्—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **धातृ + अस्** बना। पूर्वसवर्णदीर्घ होकर **धातॄ + स्** बना। **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार का नकार होकर, वर्ण सम्मेलन कर **धातॄन्** रूप सिद्ध होता है।

धात्रा—तृतीया एकवचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **धातृ + आ में इकोयणचि** से ऋकार का यण् (र्) होकर और वर्णसम्मेलन कर '**धात्रा**' रूप बनता है। **धातृभ्याम्, धातृभिः धातृभ्यः** क्रमशः में भ्याम् प्रत्यय जोड़कर, भिस् और भ्यस् प्रत्यय में सकार का रूत्व-विसर्ग करके रूप सिद्ध होते हैं।

धात्रे—चतुर्थी एकवचन में 'ङे' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **धातृ + ए**, यण् होकर धातृ्र + **ए**, वर्ण सम्मेलन कर **धात्रे** रूप सिद्ध होता है।

धातुः—पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **धातृ + अस्, ऋत उत्** से उर् आदेश **धात् + उर् + स् संयोगान्तस्यलोपः** से सकार का लोप और रकार का रुत्व विसर्ग होकर **धातु :** रूप सिद्ध होता है।

धात्रोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय हुआ **धातृ + ओस्** इस स्थिति में **इकोयणचि** से ऋकार का यण् (र्) **धातर् + ओस्** और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **धात्रोः** रूप सिद्ध होता है।

वा० —ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाचम्—यह वार्तिक है। इस वार्तिक सूत्र से ऋवर्ण के परे नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है।

यथा—

धातृणाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय **धातृ + आम्** इस स्थिति में '**ह्रस्वनद्यापो नुट्**' सूत्र से 'नुट्' हुआ। तत्पश्चात् 'नामि' से दीर्घ हुआ, **ऋर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** इस वार्तिक से नकार का णकार आदेश होकर **धातॄ + णाम्** बना। वर्णसम्मेलन कर **धातृणाम्** रूप सिद्ध होता है।

धातरि—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **धातृ + इ** बना। **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण होकर **धातर् + इ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **धातरि** रूप बना है।

धातृषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **धातृ + सु** बना। **आदेश प्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर **धातृषु** रूप सिद्ध होता है।

हे धातः—सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय **धातृ + सु**। अनुबन्ध लोप होकर **धातृ + स्** बना। **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण और रपर होकर **धातर् + स्** बना। **हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सकार का लोप और रकार का रुत्व-विसर्ग होकर तथा हे का पूर्व प्रयोग होकर **हे धातः** रूप सिद्ध होता है।

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग धातृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः	धात्रोः	धातृणाम्
सप्तमी	धातरि	धात्रोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः!	हे धातारौ!	हे धातारः!

इसी प्रकार नप्तृ नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षतृ, होतृ, पोतृ और प्रशास्तृ आदि के रूप में बनते हैं।

'अप्तृन्निति सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न पिता। पितरौ। पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत्। एवं जमात्रादयः।

अर्थात्—अप्तृन्तृच्-सूत्र से नप्तृ आदि का ग्रहण नियमार्थ है, इसलिए यहाँ पर दीर्घ नहीं होता, अतः पिता, पितरौ, पितरः बनते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि **'अप्तृन्तृच्०**—सूत्र में तृन् और तृच् प्रत्ययान्त शब्दों का दीर्घ का विधान किया गया है और **नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षतृ, होतृ पोतृ और प्रशास्तृ** शब्द भी तृन् और तृच् प्रत्ययान्त है, अतः **'अप्तृन्तृच्'** केवल इतने ही सूत्र से सभी तृच्, तृन् प्रत्ययान्त को ग्रहण कर लिया जाता और दीर्घ हो जाता, अतः इनका ग्रहण व्यर्थ है और नप्तृ आदि के लिए एक नियम बनता है। **सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति**। अर्थात् सिद्ध होते हुए पुनः उसी कार्य के लिए अधिक कथन करना एक नियम होता है। वह नियम यह है कि **उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृजन्तानां दीर्घश्चेद नप्त्रादिनामेव**। अर्थात् उणादि प्रकरण में कहे गये 'तृन्' 'तृच्' प्रत्ययान्त शब्दों के उपधा को दीर्घ हो तो केवल नप्त्रादि शब्दों को ही हो अन्य को नहीं। इस नियम से नप्त्रादि शब्दों को छोड़कर उणादिगण में सिद्ध अन्य शब्दों में उपधा को दीर्घ न हो। यह केवल **अप्तृन्तृच०**—से प्राप्त दीर्घ को है, **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** के लिए नहीं है।

तेनेह न। पिता। पितरौ। पितराः—इस नियम से उणादिगण में पठित तृच् प्रत्ययान्त शब्द पितृ की उपधा को दीर्घ नहीं हुआ और **पितरौ, पितरः, पितरम्,** आदि सिद्ध हो जाते हैं।

पिता—प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **पितृ + स्** इस स्थिति में **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** सूत्र से ऋकार को अनङ् आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **पित् + अन् + स्** अर्थात् **'पितन् + स्' सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से नान्त की उपधा को दीर्घ होकर **पितान् + स्** बना। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सकार का लोप और **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर **पिता** रूप सिद्ध होता है।

पितरौ—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय **पितृ + औ, ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण और 'रपर' होकर **पितरौ** रूप बनता है।

पितरः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **पितृ + अस्** बना। **ऋतोङि०**—से गुण और रपर होकर **पितर् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर, वर्ण सम्मेलन करने पर **पितरः** रूप सिद्ध होता है।

सम्बोधन में **हे धातः!** के समान **हे पितः!** रूप बनता है। पितृ के शेष रूप धातृ के समान ही बनते हैं। जामातृ और भ्रातृ के रूप भी पितृवत् ही बनेंगे।

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग पितृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः!	हे पितरौ!	हे पितरः!

ना—ऋकारान्त नृ (मनुष्य) शब्द से प्रथमा एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **नृ + स्** बना। **ऋदुशनस्०**—से ऋकार को अनङ् आदेश, अनुबन्ध लोप **नन् + स** बना। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ होकर **नान् + स्** बना। सकार और नकार का लोप होकर '**ना**' रूप सिद्ध होता है।

नरौ—नृ + औ, ऋकार का **ऋतो ङिसर्वनामस्थनयोः** गुण और रपर होकर '**नर् + औ**' वर्ण सम्मेलन कर 'नरौ' रूप बनता है। इसी प्रकार जस्, अम्, औट् में क्रमशः **नरः, नरम्, नरौ** रूप बनेंगे।

नॄन्—'नृ' शब्द से शस् प्रत्यय **नृ + शस्**, अनुबन्ध लोप '**नृ + अस्**' बना। **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर **नॄ + स्** बना **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार का नकार होकर '**नॄन्**' रूप बनता है।

न्रा—नृ + टा, अनुबन्ध लोप, **नृ + आ**, इकोयणचि से ऋकार का यण् (र्) **न् + र् + आ** वर्ण सम्मेलन कर '**न्रा**' रूप सिद्ध होता है।

नृभ्याम्—नृ + भ्याम् में प्रत्यय जोड़कर, वर्ण सम्मेलन करके **नृभ्याम्** रूप बनता है।

नृभिः। नृभ्यः—'नृ + भिस्' और 'नृ + भ्यस्' में सकार का रुत्व विसर्ग होकर **नृभिः** और **नृभ्यः** रूप बनते हैं।

न्रे—नृ + ङे अनुबन्ध लोप होकर, **नृ + ए,** ऋकार का यण् होकर **न् + र् + ए,** वर्ण सम्मेलन कर **न्रे** रूप बनता है।

नुः—नृ + ङसि, अनुबन्ध लोप होकर **नृ + अस्**, '**ऋत उत्**' सूत्र से ऋकार और अकार का रपर होकर 'उर्' आदेश **न् + उर् + स्, संयोगान्तस्य लोपः** से सकार का लोप और रकार की विसर्ग होकर, वर्ण सम्मेलन कर **नुः** रूप सिद्ध होता है।

न्रोः—नृ + ओस्, '**इकोयणचि**' से यण् होकर **न् + र् + ओस्** बना। सकार का रुत्व—विसर्ग होकर **न्रोः** रूप सिद्ध होता है।

वैकल्पिकदीर्घविधायकंविधिसूत्रम्।

१०४. नृ च।।६।४।६।।

वृत्ति—अस्य नामि वा दीर्घः। नृणाम्, नृणाम्।

अर्थ—नाम् के परे होने पर 'नृ' शब्द को विकल्प से दीर्घ होता है।

व्याख्या—नृ शब्द के परे षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय आता है। और नुट् होकर **नृ + नाम्** हो जाता है, अतः इस सूत्र से विकल्प से **नृ** को दीर्घ होकर नॄणाम् रूप बनता है और विकल्प से जब दीर्घ नहीं होता है तो नृणाम् रूप बनता है। इस प्रकार दोनों रूप बनते है। **यथा**—

नॄणाम्, नृणाम्—नृ + आम्, नुट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **नृ + नाम्** बना। **'नामि'** सूत्र से नित्य दीर्घ प्राप्त था किन्तु **'नृ च'** से विकल्प से दीर्घ प्राप्त हुआ और **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** से नकार का णकार होकर **नॄणाम्** रूप बनता है। **विकल्प** से दीर्घ के अभाव में **नृणाम्** रूप बनता है।

नरि—**नृ + ङि अनुबन्ध लोप, नृ + इ** बना। **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण और रपर होकर **न् + अर् + इ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **नरि** रूप बनता है।

नृषु—नृ + सुप्, अनुबन्ध लोप होकर **नृ + सु**, सकार का षकार होकर **नृषु** रूप बनता है।

हे नः—सम्बोधन एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **नृ + स्** ऋकार का गुण और रपर होकर **न् + अर् + स्**, सकार का लोप, रकार का विसर्ग होकर तथा हे का पूर्व प्रयोग कर **हे नः**! रूप बनता है। प्रथमा द्विवचन और बहुवचन के समान हे का पूर्व प्रयोग करके **हे नरौ**! **हे नरः**! रूप बनते हैं।

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग नृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पञ्चमी	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी	नुः	न्रोः	नॄणाम्, नृणाम्
सप्तमी	नरिं	न्रोः	नृषु
सम्बोधन	हे नः!	हे नरौ!	हे नरः!

।।ऋकारान्त शब्द समाप्त।।

ओकारान्त शब्द

णिद्वद्भाव विधायकमतिदेशसूत्रम्।

१०५. गोतो णित्।।७।१।९०।।

वृत्ति—ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत्। गौः। गावौ। गावः।

अर्थ—ओकारान्त शब्द से विधान किये गये सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय को णिद्वद्भाव होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से केवल ओकारान्त से विधान किये गये सर्वनाम स्थान को णिद्वद्भाव होता है। णिद्वद्भाव करने का फल यह होगा कि जो कार्य णित् प्रत्यय के परे होता है वह कार्य यहाँ भी होगा। अर्थात् '**अचो ञ्णिति**' से ओकारान्त शब्दों में होने वाली वृद्धि यह णिद्वद्भाव का फल है। **यथा**—

गौः—ओकारान्त गो शब्द से प्रथमा एक वचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गो + स्** बना। **गोतो णित्** से 'स्' का णिद्वद्भाव होकर **अचोञ्णिति** से ओकार को वृद्धि करके औकार हुआ, **गौ + स्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गौः** रूप सिद्ध होता है।

गावौ—गो शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय **गो + औ**, णिद्वद्भाव होकर, वृद्धि करके **गौ + औ** बना। **एचोऽयवायावः** से गौ के औकार का आव् आदेश **ग् + आव् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**गावौ**' रूप बनता है।

गावः—गो + जस्, अनुबन्ध लोप, **गो + अस्** णिद्वद्भाव, वृद्धि **गौ + अस्**, औकार का आव् आदेश, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गावः** रूप बनता है।

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१०६. औतोऽम्शसोः।।६।१।९३।।

वृत्ति—ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः।

गाम्, गावौ, गाः, गवा, गवे, गोः। इत्यादि।

अर्थ और व्याख्या—ओकारान्त शब्द से अम् और शस् प्रत्ययों के अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर आकार एकादेश होता है। **यथा**—

गाम्—गो + अम् इस स्थिति में णिद्वद्भाव होकर वृद्धि प्राप्त थी किन्तु उसका बाधकर, **औतोऽम्शसोः** सूत्र से 'गो' के 'ओकार' और 'अम्' के अकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ, **ग् + आ + म्** बना। वर्ण सम्मेलन करके '**गाम्**' रूप सिद्ध होता है।

गाः—गो + शस्, अनुबन्ध लोप, **गो + अस्**, इस स्थिति में **औतोऽम्शसोः** सूत्र से 'गो' के 'ओकार' और 'अस्' के 'अकार' के स्थान पर **आकार** आदेश, **ग् + आ + स्**, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर, वर्णसम्मेलन करके **गाः** रूप सिद्ध होता है।

गावा—गो + टा, अनुबन्ध लोप, **गो + आ**, ओकार का अव् आदेश, **ग् + अव् + आ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**गवा**' रूप बनता है।

गो + भ्याम् = गोभ्याम्, गो + भिस् = गोभिः।

गवे—गो + ङे, अनुबन्ध लोप, **गो** + **ए**, अव् आदेश **गव्** + **ए**, वर्णसम्मेलन कर
'गवे' रूप सिद्ध होता है। **गो** + **भ्यस्**, रुत्व विसर्ग होकर **गोभ्यः** रूप बनता है

गोः—पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति में **ङसि** और **ङस्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गो** + **अस्** बना। **ङसिङसोश्च** से पूर्व रूप होकर **गो** + **स्** बना। सकार का रुत्व—विसर्ग होकर **गोः** रूप बनता है।

गवोः—गो + ओस्, **एचोऽयवायावः** से ओकार का अव् आदेश होकर **गव्** + **ओस्**, सकार का रुत्व विसर्ग होकर **'गवोः'** रूप बनता है।

गवाम्—गो + आम्, गव् + आम् वर्णसम्मेलन करे **गवाम्** रूप बना।

गवि—गो + ङि, अनुबन्ध लोप, गो + इ, अव् आदेश, **गव्** + **इ** वर्ण सम्मेलन कर **'गवि'** रूप सिद्ध होता है।

गोषु—गो + सुप्, अनुबन्ध लोप, **गो** + **सु**, सकार का षकार आदेश होकर **गोषु** रूप बनता है।

ओकारान्त पुल्लिङ्ग गो—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	हे गौः!	हे गावौ!	हे गावः!

।।ओकारान्त शब्द समाप्त।।

ऐकारान्त शब्द

आकारादेशविधायकं विधि सूत्रम्।

१०७. रायो हलि।।७।२।८५।।

वृत्ति—अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ। राः। रायौ। रायः। राभ्यामित्यादि। ग्लौः। ग्लावौ। ग्लावः। ग्लौभ्याम् इत्यादि।

अर्थ और व्याख्या—हलादि विभक्ति के परे होने पर 'रै' शब्द के एकार के स्थान पर आकार आदेश होता है। **यथा**—

राः—'धन' वाचक **'रै'** शब्द से प्रथमा एक वचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **रै** + **स्** बना। **'रायो हलि'** से एकार के स्थान पर आकार आदेश, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **राः** रूप सिद्ध होता है।

रायौ—द्विवचन में **औ** प्रत्यय **रै + औ, एचोऽयवायावः** से 'ऐकार' का 'आय्' आदेश **राय् + औ**, वर्ण सम्मेलन कर '**रायौ**' रूप सिद्ध होता है।

रायः—'**रै**' शब्द से जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **रै + अस्**, ऐकार को आय् आदेश **र् + आय् + अस्**, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **रायः** रूप सिद्ध होता है।

राभ्याम्—'**रै**' शब्द से 'भ्याम्' प्रत्यय, **रै + भ्याम्** इस स्थिति में '**रायो हलि**' सूत्र से 'रै' के 'ऐकार' का 'आकार' आदेश होकर **रा + भ्याम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **राभ्याम्** रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार इसके सभी रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ऐकारान्त पुल्लिङ्ग रै—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः!	हे रायौ!	हे रायः!

।।ऐकारान्त शब्द समाप्त।।

औकारान्त शब्द

औकारान्त 'ग्लौ' शब्द 'चन्द्रमा' का वाचक है।

ग्लौः—चन्द्रमा वाचक '**ग्लौ**' शब्द से प्रथमा एक वचन में '**सु**' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **ग्लौ + स्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर '**ग्लौः**' रूप सिद्ध होता है।

ग्लावौ—द्विवचन में 'औ' प्रत्यय **ग्लौ + औ**, इस स्थिति में ग्लौ के औकार का 'आव्' आदेश होकर **ग्लाव् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **ग्लावौ** रूप सिद्ध होता है।

ग्लावः—**ग्लौ + जस्**, अनुबन्ध लोप, **ग्लौ + अस्**, इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** से औकार का आव् आदेश **ग्लाव् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **ग्लावः** रूप बनता है।

ग्लौभ्याम्—ग्लौ + भ्याम् में प्रत्यय को जोड़कर सिद्ध करना है।

ग्लौ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सम्बोधन	हे ग्लौः !	हे ग्लावौ !	हे ग्लावः !

।।औकारान्त शब्द समाप्त।।

।।इति अजन्त पुल्लिङ्ग प्रकरणम्।।

अथ अजन्त स्त्रीलिङ्ग प्रकरणम्

रमा—आकारान्त शब्द

शीविधायकं विधि सूत्रम्।

१०८. औङ आपः।।७।१।१८।।

वृत्ति—आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात्। औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा। रमे। रमाः।

अर्थ—रमा-रमा शब्द की उत्पत्ति **'रमु क्रीडायाम्'** धातु से **पचाद्यच्** से अच् **प्रत्यय** होकर रम, **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय होकर, अनुबन्ध लोप, सवर्ण दीर्घ होकर **'रमा'** शब्द बनता है। रमा का अर्थ है—**'रमते विष्णुना साकम्'** अर्थात् जो विष्णु के साथ रमण करती है वह लक्ष्मी।

'रमा' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **रमा + स्** बना, इस स्थिति में **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** से अपृक्त हल् सकार का लोप होकर एकवचन में **'रमा'** रूप बनता है।

प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षणम् से सु का लोप होने पर भी रमा शब्द में पद संज्ञा विद्यमान रहती है। अर्थात् रमा पद कहलाता है।

अर्थ—औङ इति—आबन्त अङ्ग से परे औ विभक्ति के स्थान पर 'शी' आदेश होता है।

व्याख्या—आबन्त (आकार हो अन्त में जिसके) के परे औङ **औ** विभक्ति का औकार और **औट्** विभक्ति का औकार होने पर औकार के स्थान पर 'शी' आदेश हो जाता है। **यथा**—

रमे—'रमा' शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय, **रमा + औ** इस स्थिति में **औङ आपः** से आबन्त अङ्ग रमा के परे औकार के स्थान पर 'शी' आदेश हुआ। **रमा + शी** में **लशक्वतद्धिते** से शकार की इत्संज्ञा होकर **तस्यलोपः** से शकार का लोप हुआ। **रमा + ई** इस स्थिति में **आद्गुणः** से अ + ई के स्थान पर गुण (ए) होकर **'रमे'** रूप सिद्ध होता है। द्वितीया के द्विवचन में भी इसी प्रकार से **'रमे'** रूप बनता है।

रमाः—प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय आये और अनुबन्ध लोप होकर **रमा + अस्** बना। इस स्थिति में **'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः'** से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर **रमास्** बना। सकार का रुत्व-विगर्स होकर **'रमाः'** रूप सिद्ध होता है।

एकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१०९. सम्बुद्धौ च।।७।३।१०६।।

वृत्ति—आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धि लोपः हे रमे। हे रमे। हे रमाः। रमाम्। रमे। रमाः।

अर्थ—आबन्त अङ्ग को एकार आदेश हो, सम्बुद्धि के परे होने पर।

व्याख्या—सम्बुद्धि के परे होने पर आबन्त अङ्ग आकार के स्थान पर एकार आदेश हो जाता है। यथा—

हे रमे!—'रमा' शब्द से सम्बोधन के एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **रमा + स्** इस स्थिति में **एकवचनं सम्बुद्धि** से सम्बुद्धि संज्ञा होकर **'सम्बुद्धौ च'** से आकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ **रमे + स्** बना। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप होकर और **हे** का पूर्व प्रयोग होकर **'हे रमे'** रूप सिद्ध होता है।

हे रमे और **हे रमाः** ये दोनों प्रथमा द्विवचन और बहुवचन के समान ही बनेंगे, केवल हे का पूर्व प्रयोग करना है।

रमाम्—द्वितीया एक वचन में अम् प्रत्यय **रमा + अम्** इस स्थिति में **अमिपूर्वः** से पूर्व रूप होकर **'रमाम्'** रूप सिद्ध होता है।

एकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

११०. आङि चापः।।६।३।१०५।।

वृत्ति—आङि ओसि चाप एकारः। रमया। रमाभ्याम्। रमाभिः।

अर्थ—आङ् और ओस् के परे रहने पर आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है।

व्याख्या—आङ् (टा) और ओस् प्रत्यय आबन्त अर्थात् जिसका अन्त्यवर्ण आकार हो, ऐसे आकार के परे आ प्रत्यय का आकार और ओस् प्रत्यय होने पर आकार का एकार आदेश होता है। **यथा**—

रमया—तृतीया एकवचन में टा प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **रमा + आ** इस स्थिति में रमा के **आङि चापः** सूत्र से रमा के आबन्त अङ्ग के परे 'टा' के आकार 'आङ्' होने पर रमा के आकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **रमे + आ** बना। **एचोऽयवायावः** से एकार का

'**अय्**' आदेश, **रम्** + **अय्** + **आ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**रमया**' रूप सिद्ध होता है।

रमाभ्याम्—तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् प्रत्यय, **रमा** + **भ्याम्**, वर्ण सम्मेलन करके **रमाभ्याम्** बना।

रमाभिः—तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय, **रमा** + **भिस्**, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **रमाभिः** रूप बनता है।

याडागमविधायकं विधि सूत्रम्।

१११. याडापः।।७।३।११३।।

वृत्ति—आपो ङितो याट्। वृद्धिः। रमायै। रमाभ्याम्। रमाभ्यः। रमायाः २। रमयोः २। रमाणाम्। रमायाम्। रमासु। एवंदुर्गाम्बिकादयः।

अर्थ—आबन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति को याट् का आगम हो।

व्याख्या—ङित् का अर्थ है—ङकार इत्संज्ञक हो जिसका, यथा—ङे, ङसि, ङस्, और ङि ये 'ङित्' प्रत्यय कहे जाते हैं। अर्थात् आबन्त अङ्ग आकार के परे ङित् प्रत्यय होने पर इस सूत्र से विभक्ति को याट् का आगम होता है। याट् टित् है अतः आद्यन्तौ टकितौ के नियम से यह ङित् प्रत्यय के आदि में होता है।

रमायै—'रमा' शब्द से चतुर्थी एक वचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **रमा** + **ए** इस स्थिति में **याडापः** से याट् का आगम, अनुबन्ध लोप **रमा** + **या** + **ए** बना। **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर '**रमायै**' रूप सिद्ध होता है।

रमाभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय, रमा + भ्यस् में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **रमाभ्यः** रूप बनता है।

रमायाः—पंचमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **रमा** + **अस्** इस स्थति में 'याट्' का आगम और अनुबन्ध लोप होकर **रमा** + **या** + **अस्**, **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्ण दीर्घ होकर **रमायास्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **रमायाः** रूप बनता है।

रमयोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस प्रत्यय होकर **रमा** + **ओस्** बना। **आङि चापः** से आकार का एकार आदेश **रमे** + **ओस्** बना। **एचोऽयवायावः** से एकार का अय् आदेश होकर **रम्** + **अय्** + **ओस्** बना। सकार का रुत्व विसर्ग होकर और वर्ण सम्मेलन कर **रमयोः** रूप सिद्ध होता है।

रमाणाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय **रमा** + **आम्** इस स्थिति में **ह्रस्वनाद्यापो नुट्** से आबन्त रमा के आगे नुट् का आगम **रमा** + **नुट्** + **आम्** अनुबन्ध लोप होकर **रमा** + **न्** + **आम्** बना। 'नामि' से दीर्घ हुआ **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार का णकार आदेश होकर और वर्णसम्मेलन कर **रमाणाम्** रूप सिद्ध होता है।

रमायाम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **रमा** + **इ** बना। **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङि के इकार को आम् आदेश **रमा** + **आम्** बना। **याडापः** से याट् का आगम, अनुबन्ध लोप, **रमा** + **या** + **आम्** बना। सवर्ण दीर्घ होकर '**रमायाम्**' रूप बनता है।

रमासु—सप्तमी बहुवचन में 'सुप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **रमा + सु** बना वर्ण सम्मेलन कर **रमासु** रूप सिद्ध होता है।

एवमिति—इसी प्रकार आकारान्त स्त्रिलिङ्ग के रूप सिद्ध होते हैं।

रमा—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पञ्चमी	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	रमयोः	रमासु
सम्बोधन	हे रमे !	हे रमे !	हे रमाः !

सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग शब्द

स्याडागम—ह्रस्वविधायकं सूत्रम्।

११२. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च।।७।२।११४।।

वृत्ति—आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः। सर्वस्यै। सर्वस्याः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। एवं विश्वादयः आबन्ताः।

अर्थ—सर्वनाम संज्ञक आबन्त शब्द से परे ङित् विभक्ति को स्याट् का आगम हो।

व्याख्या—सर्वा आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द है, फिर भी इसके रूपों में रमा शब्द से भिन्नता है। जहाँ पर रमा शब्द में याट् का आगम होता है, वहाँ सर्वनाम संज्ञक शब्दों में इस सूत्र से स्याट् का आगम होता है और आप् अर्थात् आकार को ह्रस्व भी हो जाता है। स्याट् में टकार इत्संज्ञक है इसलिए टित् होने के कारण यह आगम ङित् प्रत्यय के आदि में होता है। **यथा**—

सर्वस्यै—सर्वा शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **सर्वा + ए** बना। इस स्थिति में आबन्त सर्वनाम **सर्वा** के परे ङित् प्रत्यय होने पर **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च**—सूत्र से स्याट् का आगम और सर्वा के आकार का ह्रस्व होकर, अनुबन्ध लोप होकर **सर्व + स्या + ए** बना। **वृद्धिरेचि** से वृद्धिएकादेश होकर और वर्ण सम्मेलन करके '**सर्वस्यै**' रूप सिद्ध होता है।

सर्वस्याः—पंचमी और षष्ठी के एकवचन में ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **सर्वा + अस्** बना। इस स्थिति में 'स्याट्' का आगम तथा सर्वा के आकार का ह्रस्व होकर **सर्व + स्या + अस्** बना **सवर्णदीर्घ** और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **सर्वस्याः** रूप सिद्ध होता है।

सर्वासाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय होकर **सर्वा** + **आम्** बना। **आमि सर्वनाम्नः सुट्** सूत्र से आम् के पूर्व सुट् का आगम होकर **सर्वा** + **सुट्** + **आम्**, अनुबन्ध लोप होकर **सर्वा** + **स्** + **आम्** वर्ण सम्मेलन कर **सर्वासाम्** रूप सिद्ध होता है।

सर्वस्याम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **सर्वा** + **इ** बना। **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** सूत्र से ङि के इकार को आम् आदेश **स्याट्** का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **सर्व** + **स्या** + **आम्** बना सवर्णदीर्घ होकर और वर्ण सम्मेलन कर **सर्वस्याम्** रूप सिद्ध होता है।

शेषमिति—सर्वा शब्द के शेष रूप 'रमा' शब्द के समान बनते हैं। इसी प्रकार विश्वा, कतरा, कतमा आदि आबन्त स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम शब्दों के भी रूप बनेंगे।

आबन्त स्त्रीलिङ्ग सर्वा—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सम्बोधन	हे सर्वे!	हे सर्वे!	हे सर्वाः!

वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

११३. विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ।।१।१।२८।।

वृत्ति—सर्वनामता वा। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै। 'दिङ्नामान्यन्तराले' इति प्रतिपदोक्तस्यैव समासस्य ग्रहान्नेह—योत्तरा सा पूर्वा यस्या उन्मुग्धायास्तस्यै उत्तरपूर्वायै। बहुव्रीहिग्रहणं स्पष्टार्थम्। अन्तरस्यै शालायै। बाह्यायै इत्यर्थः। अपुरीत्युक्तेर्नेह-अन्तरायै नगर्यै। तीयस्येति ङित्सु वा। द्वितीयस्यै। द्वितीयायै। एवं तृतीया। अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ल। (वा०) असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न। हे अम्बाडे। हे अम्बाले। हे अम्बिके। जरा। जरसौ—जरे। इत्यादि। पक्षे हलादौ च रमावत्। गोपाविश्वपावत्।

मतीः। मत्या।

अर्थ—दिशावाचक शब्दों के बहुव्रीहि समास में सर्वादि की विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है।

व्याख्या—दिङ्नामान्यन्तराले—पूर्वादि चार मुख्य दिशाओं के मध्य का भाग उपदिशा कहलाता है। दिशा वाचक दिक् शब्द स्त्रीलिङ्ग है। 'दिङ्नामान्यन्तराले' से दिशा वाचक शब्दों का बहुव्रीहि समास होता और सर्वनाम संज्ञा वैकल्पिक हो जाती है।

सर्वनाम संज्ञा प्रयुक्त कार्य स्त्रीलिङ्ग में केवल ङित् प्रत्ययों के परे और आम् प्रत्ययों के परे ही होंगे शेष रूप रमावत् ही बनेंगे। **यथा**—उत्तरपूर्वा (उत्तर और पूर्व की दिशाओं का अन्तराल) उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दिक् उत्तरपूर्वा। यहाँ पर बहुव्रीहि समास है। उत्तरपूर्वा शब्द की **सर्वादीनि सर्वनामानि** से नित्य प्राप्त सर्वनाम संज्ञा **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ** से विकल्प से हो जाती है किन्तु सर्वनाम संज्ञा को आधार मानकर 'ङित्' विभक्ति में 'स्याट्' का आगम और ह्रस्व होकर **उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वस्याः** और **उत्तरपूर्वस्याम्** रूप बनते हैं और सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में **रमावत्, उत्तरपूर्वायै, उत्तरपूर्वायाः, उत्तरपूर्वायाम्** आदि रूप बनते हैं। शेष सर्वा—शब्द के समान **उत्तरपूर्वा, उत्तरपूर्वे, उत्तरपूर्वाः** आदि रूप बनते हैं।

तीयस्येति वा० सर्वनामसंज्ञा—तीय प्रत्ययान्त द्वितीया एवं तृतीया शब्दों की भी ङित् प्रत्ययों के परे 'तीयस्य ङित्सु वा' वार्तिक से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होने पर द्वितीयस्यै, द्वितीयस्याः, द्वितीयाय्राः २, द्वितीयस्याम् एवं तृतीयस्यै, तृतीयस्याः, तृतीयस्याम् रूप बनेंगे। सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में रमावत् द्वितीयायै, द्वितीयायाः, द्वितीयायाम् एवं तृतीयायै, तृतीयायाः, तृतीयायाम् रूप बनेंगे। 'ङित्' विभक्ति न होने पर सर्वनामसंज्ञा नहीं होगी, अतः शेष रूप रमावत् ही बनेंगे।

अम्बार्थ इति—मातृवाचक अम्बा, अक्का और अल्ला आबन्त है, इसके रूप रमावत् होते हैं किन्तु अम्बार्थ होने के कारण केवल सम्बोधन में **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से ह्रस्व होकर **हे अम्ब! हे अक्क! हे अल्ल**! ये रूप बनते हैं।

असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां—असंयुक्त जो डकार, लकार, ककार तद्वान् जो अम्बार्थक शब्द, उनमें ह्रस्व नहीं होता है। **यथा—हे अम्बाले** यहाँ पर लकार असंयुक्त हैं, अम्बार्थक शब्द है, अतः यहाँ पर ह्रस्व न होकर **हे अम्बाडे, हे अम्बाले, हे अम्बिके** रूप बनते है।

जरा इति—वृद्धता वाचक 'जरा' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय के परे होने पर आबन्त 'जरा' शब्द को रमावत् **'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्'** से अपृक्त हल् सकार का लोप हो जाता है और **'जरा'** रूप सिद्ध होता है।

जरसौ—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय **जराया जरसन्यतरस्याम्** से 'जरा' का 'जरस्' आदेश होकर **'जरसौ'** रूप बनता है।

अजादि विभक्तियों में **'जरा'** का 'जरस्' आदेश विकल्प से होता है। सभी आजादि विभक्तियों में एक रूप जरस् आदेश होकर बनता है और दूसरा रूप रमावत् बनेगा। सभी हलादि विभक्तियों में जरस् आदेश नहीं होता है।

आबन्तस्त्रीलिङ्ग—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
द्वितीया	जरसम्, जराम्	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
तृतीया	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः

चतुर्थी	जरसे, जरायै	जराभ्याम्	जराभ्य:
पञ्चमी	जरस:, जराया:	जराभ्याम्	जराभ्य:
षष्ठी	जरस:, जराया:	जरसो:, जरयो:	जरसाम्, जराणाम्
सप्तमी	जरसि, जरायाम्	जरसो:, जरयो:	जरासु
सम्बोधन	हे जरे!	हे जरसौ! हे जरे!	हे! जरस:, हे जरा!

गोपा इति—गांपाति रक्षतीति गोपा: (गाय को पालने वाली या रक्षा करने वाली स्त्री) गोपा शब्द **'गो' पूर्वक 'पा'** धातु से बनता है। गोपा शब्द के रूप विश्वपावत् बनते हैं। यह आबन्त नहीं है क्योंकि इसमें 'पा' धातु है, अत: स्त्रीलिङ्ग प्रयुक्त कोई कार्य नहीं होगा, सभी रूप पुल्लिङ्ग विश्वपावत् ही बनेंगे।

यदि 'गोपस्य स्त्री' गोप की पत्नी इस विग्रह से रूप सिद्ध होता है तो वहाँ 'पा' धातु न होकर स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्रत्यय होकर **गोपी** शब्द बनता है जिसके रूप नदी शब्द के समान बनते हैं।

।।आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द समाप्त।।

ह्रस्व इकारान्त शब्द

'मन ज्ञाने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर **'मति'** शब्द बनता है जिसका अर्थ है 'बुद्धि'। इसके सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पाँच विभक्तियों के परे तथा सम्बोधन के तीनों रूप 'हरि' शब्द के समान बनते हैं।

मति:—'मति' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति + स्** रूप बनता है। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **'मति:'** रूप सिद्ध होता है।

मती—मती + औ, **'प्रथमयो: पूर्वसवर्ण:'** से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर **'मती'** रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार द्वितीया द्विवचन में भी मती रूप बनता है।

मतय:—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **मति + अस् 'जसि च'** से गुण होकर **मते + अस्, एचोऽयवायाव:** से एकार का अय् आदेश **मत् + अय् + अस्** सकार का रुत्व विसर्ग होकर **'मतय:'** रूप सिद्ध होता है।

मतिम्—द्वितीया एकवचन में 'अम्' प्रत्यय **मति + अम्** बना। **'अमिपूर्व:'** से पूर्वरूप होकर **'मतिम्'** रूप सिद्ध होता है।

मती:—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति + अस्** बना। **पूर्वसवर्ण दीर्घ** होकर **मतीस्** बना। स्त्रीलिङ्ग में सकार का नकार नहीं होता अपितु सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **'मती:'** रूप **बनता है।**

मत्या—तृतीया एकवचन में **'टा'** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति + आ** बना। **'इकोयणचि'** से मति के इकार का यण् (यकार) होकर **मत्य् + आ** बना। वर्णसम्मेलन कर **'मत्या'** रूप बनता है।

मतिभ्याम्—तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में **भ्याम्** प्रत्यय **मति** + भ्याम् बना। वर्ण सम्मेलन कर '**मतिभ्याम्**' रूप बनते हैं।

मतिभिः—तृतीया बहुवचन में **भिस्** प्रत्यय **मति** + **भिस्** इस स्थिति में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर '**मतिभिः**' रूप बनता हैं।

वैकल्पिकनदीसंज्ञा विधायकं संज्ञासूत्रम्।

११४. ङिति ह्रस्वश्च।।१।४।६।।

वृत्ति—इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ चेवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्याः २ मतेः २।

अर्थ—स्त्री शब्द को छोड़कर नित्य स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान इयङ् और उवङ् के स्थानी दीर्घ ईकार और दीर्घ ऊकार तथा स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ह्रस्व इकार और उकार भी विकल्प से नदी संज्ञक होते हैं, ङित् विभक्ति के परे होने पर।

व्याख्या—उक्त सूत्र से दो प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्दों की विकल्पतः नदी संज्ञा होती है। प्रथम तो 'स्त्री' शब्द को छोड़कर दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्गवाची शब्द हों, तथा जिनमें इयङ् और उवङ् आदेश होने की योग्यता हो। द्वितीय वे ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्द जो वर्तमान में स्त्रीलिङ्ग हैं। दोनों प्रकार के शब्दों से ङित् विभक्ति ङे, ङसि, ङस्, ङि के परे होने पर विकल्प से नदी संज्ञा हो जाती है।

दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों से '**यू स्त्राख्यौ नदी**' सूत्र से नित्य नदी संज्ञा प्राप्त थी तथा ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दों से प्राप्त नहीं थी, ऐसे शब्दों से ङित् प्रत्यय परे रहत उक्त सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा करने का विधान किया गया है। **यथा**—मति शब्द ह्रस्व इकारान्त होने के कारण घिसंज्ञक है। 'नदी संज्ञा' 'घि संज्ञा' का बाधक है, अतः नदीसंज्ञा होने के पक्ष में नदी संज्ञा आश्रित कार्य होंगे और घिसंज्ञा होने पर घिसंज्ञा आश्रित कार्य होंगे।

यथा—मत्यै, मतये—'मति' शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति** + **ए** बना। **ङिति ह्रस्वश्च** सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा होकर '**आण्नद्याः**' से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **मति** + **आ** + **ए** बना। आटश्च से वृद्धि एकादेश होकर **मति** + **ऐ** बना। **इकोयणचि** से इकार का यण् 'य्' होकर **मत्य्** + **ऐ** में वर्ण सम्मेलन करके '**मत्यै**' रूप सिद्ध होता है। नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में **घेर्ङिति** सूत्र से गुण होकर **मते** + **ए** बना। **एचोऽयवायावः** सूत्र से मते के एकार का अय् आदेश होकर मत् + **अय्** + **ए** बना। वर्णसम्मेलन कर '**मतये**' रूप सिद्ध होता है।

मत्याः, मतेः—मति शब्द से पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति** + **अस्** बना। इस स्थिति में **ङिति ह्रस्वश्च** से विकल्प से नदी संज्ञा होकर, **आण्नद्याः** से आट् का आगम हुआ। अनुबन्ध लोप होकर **मति** + **आ** + **अस्** बना। '**आटश्च**' से **आ** + **अस्** में वृद्धि होकर **मति** + **आस्** बना। **इकोयणचि** से इकार का यण् (य्) होकर **मत्य्** + **आस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर तथा वर्णसम्मेलन कर मत्याः रूप सिद्ध होता है। नदी संज्ञा के अभाव

पक्ष में घिसंज्ञक मानकर **मति + अस्** इस स्थिति में **घेर्ङिति** से गुण होकर **मते + अस्** बना। **ङसिङसोश्च** से पूर्वरूप होकर **मतेस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **मते:** रूप सिद्ध होता है।

मत्यो:—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय होकर **मति + ओस्** बना। इस स्थिति में **इकोयणचि** से इकार का यण् (य्) होकर **मत्य् + ओस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर तथा वर्ण सम्मेलन कर 'मत्यो:' रूप बनता है।

मतीनाम् षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय, **मति + आम्** बना। '**ह्रस्वनद्यापोनुट्**' से नुट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **मति + नाम्** बना। '**नामि**' सूत्र से दीर्घ होकर **मती + नाम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **मतीनाम्** रूप बनता है।

ङेरामादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

११५. इदुद्भ्याम्।।७।३।११७।।

वृत्ति—नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्याम् परस्य ङेराम् स्यात्। पक्षे अच्च घे:। मत्याम्। मतौ। शेषं हरिवत् एवं बुद्ध्यादय:।

अर्थ—नदी संज्ञक ह्रस्व इकार और उकार से परे 'ङि' के स्थान पर 'आम्' आदेश हो।

व्याख्या—इस सूत्र से मति शब्द के सप्तमी एकवचन में ह्रस्व इकार होने से ङि के स्थान पर आम् आदेश हो जाता है। **यथा**—

मत्याम् मतौ—मति शब्द से सप्तमी एकवचन में **ङि** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **मति + इ** बना। **ङिति ह्रस्वश्च** से विकल्प से नदी संज्ञा होकर **इदुद्भ्याम्** सूत्र से ङि के इकार को आम् आदेश हुआ और **मति + आम्** बना। **आण्नद्या:** से आट् का आगम अनुबन्ध लोप होकर **मति + आ + आम्** बना। '**आटश्च**' से वृद्धि होकर **आ + आ = आ** होकर **मति + आम्** बना। '**इकोयणचि**' से यण् होकर **मत्य् + आम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **मत्याम्** रूप बनता है। नदीसंज्ञा के अभावपक्ष में घिसंज्ञा मानकर **मति + इ** इस स्थिति में **अच्च घे:**—सूत्र से मति के इकार का आकार आदेश तथा ङि के इकार का औकार आदेश होकर **मत + औ** बना। **वृद्धिरेचि** से वृद्धि आदेश होकर **मतौ** रूप बनता है।

शेष रूप हरिवत् बनेंगे। बुद्धि आदि ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी मतिवत् ही बनेंगे।

ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग मति—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मति:	मती	मतय:
द्वितीया	मतिम्	मती	मती:
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभि:
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्य:

पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते!	हे मती!	हे मतयः!

तिसृ—चतस्रादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

११६. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ।।७।२।९९।।

वृत्ति—स्त्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

अर्थ और व्याख्या—विभक्ति के परे होने पर स्त्रीलिङ्ग 'त्रि' और 'चतुर्' शब्द के स्थान पर क्रमशः तिसृ और चतसृ आदेश होता है।

तीन संख्या वाचक त्रि शब्द और चार संख्या वाचक चतुर् शब्द है। ये केवल बहुवचनान्त होते हैं। चतुर् शब्द हलन्त होने के कारण हलन्तस्त्रीलिङ्ग प्रकरण में सिद्ध होगा।

रेफादेशविधायकं विधि सूत्रम्।

११७. अचि र ऋतः।।७।२।१००।।

वृत्ति—तिसृ—चतसृ एतयोर्ऋकारस्यरेफादेशःस्यादचि। गुणदीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। आमि नुट्।

अर्थ—'तिसृ' और 'चतसृ' के ऋकार को रेफ (र्) आदेश होता है, अच् के परे होने पर।

व्याख्या—यह सूत्र रेफ आदेश करता है यदि उसके परे अच् हो तो, किन्तु गुण, दीर्घ और उत्व का अपवाद है। **यथा**—जस् विभक्ति के परे होने पर, अनुबन्ध लोप होकर **तिसृ + अस्** बनता है। इस स्थिति में **ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु यह सूत्र गुण का अपवाद है। **प्रथमयोः पूर्व सवर्णः** से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था, उसका भी अपवाद होकर, **ऋत उत्**—सूत्र से प्राप्त उत्व का भी अपवाद होकर इन सबका बाधक है।

तिस्रः—'त्रि' शब्द से प्रथमा बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **त्रि + अस्** बना। **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** से 'त्रि' को तिसृ आदेश होकर **तिसृ + अस्** बना। इस स्थिति में **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु गुण का बाध होकर **अचि र ऋतः** से अच् के परे रहते ऋकार को रेफ (र्) आदेश होकर तथा सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **'तिस्रः'** रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार द्वितीया बहुवचन में **शस्** प्रत्यय के परे रहते अनुबन्ध लोप होकर 'अस्' शेष रहता है और प्रथमा बहुवचन के समान ही **तिस्रः** रूप बनता है।

तिसृभिः—'त्रि' शब्द से तृतीया बहुवचन में 'भिस्' प्रत्यय, त्रि का तिसृ आदेश होकर **तिसृ + भिस्** बना इस स्थिति में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **तिसृभिः** रूप बनता है।

तिसृभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय, त्रि का तिसृ आदेश होकर, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **तिसृभ्यः** रूप सिद्ध होता है।

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्।

११८. न तिसृचतसृ।।६।४।४।।

वृत्ति—एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु।

द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः।

गौरी। गौर्य्यौ। गौर्य्यः। हे गौरि! गौर्य्यै इत्यादि। एवं नद्या—

दयः। लक्ष्मीः। शेष गौरीवत्। एवं तरीतन्त्र्यादयः। स्त्री। हे स्त्रि।

अर्थ—नाम् परे होने पर तिसृ और चतसृ को दीर्घ नहीं होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से षष्ठी बहुवचन में आये आम् प्रत्यय में नुट् का आगम होकर न् + आम्= **नाम्** हो जाने पर **नामि** सूत्र से तिसृ ओर चतसृ को दीर्घ आदेश नहीं होता है।

तिसृणाम्—त्रि शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय आया। '**त्रिचतुरो स्त्रियां तिसृ चतसृ** से **त्रि** को **तिसृ** आदेश होकर **तिसृ + आम्** बना। इस स्थिति में अच् परे रहते '**अचि र ऋतः**' से ऋकार को रेफ आदेश प्राप्त था तथा **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् का आगम प्राप्त था। '**विप्रतिषेधे परं कार्यम्**' इस नियम से परकार्य रेफादेश होना चाहिए था किन्तु **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन** इस (वा०) के अनुसार अचिर भाव की अपेक्षा 'नुट्' प्रबल है अतः रेफ आदेश से पहले नुट् ही हुआ **तिसृ + न् + आम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **तिसृ + नाम्** में नाम् के परे रहते '**नामि**' सूत्र से दीर्घ प्राप्त था किन्तु '**न तिसृचतसृ**' से दीर्घ का निषेध होकर '**ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यं**' से नकार का णकार होकर '**तिसृणाम्**' रूप सिद्ध होता है।

तिसृषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, प् का लोप होकर **त्रि + सु** इस स्थिति में 'त्रि' को 'तिसृ' आदेश होकर और सकार का **आदेश प्रत्यययोः** से षकार होकर '**तिसृषु**' रूप बनता है।

इस तरह 'त्रि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में रूप बनते हैं—**तिस्रः, तिस्रः तिसृभिः तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम्, तिसृषु**। चतुर् के स्थान पर स्त्रीलिङ्ग में चतसृ आदेश होकर अजन्त बन जाता है और उसके रूप इस प्रकार सिद्ध होते हैं **चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु**।

'द्वि' शब्द नित्य द्विवचनान्त है इसके स्त्रीलिङ्ग में रूप इस प्रकार सिद्ध होते हैं—**द्वे, द्वे, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः द्वयोः**।

द्वे—'द्वि' शब्द से प्रथमा द्विवचन में **औ** प्रत्यय आया **द्वि + औ** इस स्थिति में **त्यदादीनामः** सूत्र से इकार को अकार आदेश **द्व + औ** बना। स्त्रीत्व की विवक्षा में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर आ शेष बचा। **द्व + आ + औ** इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर **द्वा + औ** बना। **औङ आपः** से औकार को '**शी**' आदेश और

अनुबन्ध लोप होकर **द्वा + ई** बना। आकार और ईकार का गुण एकार होकर 'द्वे' रूप सिद्ध होता है।

द्वितीया द्विवचन में भी प्रथमा द्विवचन के समान ही 'द्वे' रूप सिद्ध होता है।

द्वाभ्याम्—तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति के द्विवचन में 'भ्याम्' प्रत्यय आया। **द्वि + भ्याम्** इस स्थिति में **त्यदादीनामः** से इकार का अकार, टाप् प्रत्यय, सवर्णदीर्घ होकर **द्वा + भ्याम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **द्वाभ्याम् रूप** बनता है।

द्वयोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में **ओस्** प्रत्यय, द्वि + ओस इस स्थिति में **त्यदादीनामः** से इकार का अकार, टाप् प्रत्यय, सवर्णदीर्घ होकर **द्वा + ओस्** बना। **आङि चापः** से अकार को एकार आदेश होकर **द्वे + ओस्** बना। **एचोऽयवायावः** से एकार को अय् आदेश, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **द्वयोः** रूप सिद्ध होता है।

।।ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द समाप्त।।

दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग-शब्द

गौरी—'गौर' शब्द से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर '**गौरी**' बना। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + स्** बना। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्**' से सकार का लोप होकर '**गौरी**' रूप सिद्ध होता है।

गौर्य्यौ। गौर्यौ—प्रथमा द्विवचन में '**औ**' प्रत्यय, **गौरी + औ** इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त था किन्तु **दीर्घाज्जसि च** सूत्र से निषेध होकर **इकोयणचि** से ईकार को यण् (य्) होकर **गौर्य् + औ** बना। '**अचोरहाभ्यां द्वे**' से विकल्प से यकार का द्वित्व होकर **गौर् य्य् + औ** बना। **जलतुम्बिकान्यायेनरेफस्योर्ध्वगमनम्** इस न्याय से रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **गौर्य्यौ** रूप सिद्ध होता है। यकार का द्वित्व न होने पर **गौर्यौ** रूप सिद्ध होता है।

गौर्य्यः, गौर्यः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **गौरी + अस्** बना। इस स्थिति में पूर्वसवर्ण दीर्घ का **दीर्घाज्जसि च** से निषेध होकर ईकार का यण् (य्) आदेश, **गौर् य् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गौर्यः** रूप बनता है तथा यकार का विकल्प से द्वित्व होकर **गौर्य्यः** रूप बनता है।

गौरीम्—'**गौरी**' शब्द से द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय, **गौरी + अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्व रूप होकर **गौरीम्** रूप सिद्ध होता है।

गौरीः—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **गौरी + अस्** बना। इस स्थिति में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गौरीः** रूप सिद्ध होता है।

गौर्या—तृतीया एकवचन में टा प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + आ** इस स्थिति में ईकार का यण् (य्) होकर '**गौर्या**', रूप बनता है।

गौरीभ्याम्—तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् प्रत्यय आया। वर्ण सम्मेलन करके गौरीभ्याम् रूप सिद्ध होता है।

गौरीभिः—तृतीया बहुवचन में 'भिस्' प्रत्यय आया। **गौरी + भिस्** इस स्थिति में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और वर्ण सम्मेलन कर **गौरीभिः** रूप सिद्ध होता है।

गौरीभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय आया। **गौरी + भ्यस्** इस स्थिति में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गौरीभ्यः** रूप सिद्ध होता है।

गौर्य्यै, गौर्यै—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **गौरी + ए** इस स्थिति में **यूस्त्र्याख्यौ नदी** सूत्र से गौरी की नदी संज्ञा होकर **आण्नद्याः** से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + आ + ए** बना। **आटश्च** से **आ +ए** को वृद्धि **ऐकार**, **इकोयणचि** से ईकार का यण् (य्) होकर **गौर्य् + ऐ** बना। यकार का द्वित्व होकर गौर्य्यै रूप बनता है। और द्वित्व के अभाव में गौर्यै रूप सिद्ध होता है।

गौर्याः—पञ्चमी एकवचन में ङसि प्रत्यय और षष्ठी एक वचन में ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + अस्** बना। गौरी की नदी संज्ञा होकर, आट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + आ + अस्** बना। ईकार का यण् होकर **गौर्य् + आ + अस्** बना। **आटश्च** से वृद्धि और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **गौर्याः** रूप सिद्ध होता है।

गौर्योः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय आया **गौरी + ओस्** इस स्थिति में ईकार का यण् (य्) होकर और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **गौर्योः** रूप बनता है।

गौरीणाम्—षष्ठी बहुवचन में **'आम्'** प्रत्यय आया। **गौरी + आम्** इस स्थिति में **ह्रस्वनद्यपो नुट्** ने नुट् आगम, अनुबन्ध लोप **गौरी + न् + आम्** बना। **गौरी + नाम्** में नामि सूत्र से दीर्घ, **अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से नकार का णकार होकर **गौरीणाम्** रूप सिद्ध होता है।

गौर्याम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **गौरी + इ** बना। नदी संज्ञा होकर **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङि के इकार के स्थान पर आम् आदेश और **आण्नद्याः** से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + आ + आम्** बना। **आटश्च** से वृद्धि होकर और ईकार का यण् (य्) होकर **'गौर्याम्'** रूप सिद्ध होता है।

गौरीषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप **गौरी + सु** इस स्थिति में **आदेश प्रत्यययोः** से सकार का षकार आदेश होकर **गौरीषु** रूप सिद्ध होता है।

हे गौरी—सम्बोधन एक वचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **गौरी + स्** बना। **यूस्त्र्याख्यौ नदी** सूत्र से गौरी की नदीसंज्ञा हुई। **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से गौरी के ईकार का ह्रस्व होकर **गौरि + स्** बना। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप और हे का पूर्व प्रयोग होकर **'हे गौरि'** रूप बनता है।

गौरी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौरी	गौर्य्यौ, गौर्यौ	गौर्य्यः, गौर्यः
द्वितीया	गौरीम्	गौर्य्यौ, गौर्यौ	गौरीः

तृतीया	गौर्य्या, गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
चतुर्थी	गौर्य्यै, गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
पञ्चमी	गौर्य्याः, गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
षष्ठी	गौर्य्याः, गौर्याः	गौर्य्योः,गौर्योः	गौरीणाम्
सप्तमी	गौर्य्याम्, गौर्याम्	गौर्य्योः, गौर्योः	गौरीषु
सम्बोधन	हे गौरि!	हे गौर्य्योः, गौर्योः!	हे गौर्य्यः! हे गौर्यः!

एवमिति—नदी आदि नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी गौरी के समान ही बनेंगे। नदी शब्द के षष्ठी बहुवचन में नकार का णकार नहीं होता है और **नदीनाम्** रूप बनता है।

लक्ष्मीः—लक्ष्मी शब्द यद्यपि दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग है तथापि यह ङ्यन्त नहीं है। **ङ्यन्त** न होने के कारण प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय के सकार का लोप न होकर रुत्वविसर्ग हो जाता है और **लक्ष्मीः** रूप सिद्ध होता है। सु से भिन्न लक्ष्मी के सभी रूप नदीवत् ही बनते हैं।

लक्ष्मी आदि शब्दों के सु के लोप के सम्बन्ध में निम्न पद्य दृष्टव्य है—

अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धी-ह्री-श्रीणामुणादिषु।
अपि स्त्रीलिङ्गवृत्तीनां सोर्लोपो न कदाचनः।।

अर्थात् उणादिगण में पठित **अवी**, **तन्त्री**, **तरी**, **लक्ष्मी**, **धी**, **ह्री**, **श्री** ये शब्द स्त्रीलिङ्ग में होने पर भी ङ्यन्त न होने से इनके परे सु प्रत्यय का लोप नहीं होता है।

लक्ष्मी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
द्वितीया	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृतीया	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
चतुर्थी	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पञ्चमी	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
षष्ठी	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
सप्तमी	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे लक्ष्मि!	हे लक्ष्म्यो!	हे लक्ष्म्यः!

इसी प्रकार अवी, तरी, तन्त्री आदि शब्दों के रूप बनते हैं।

स्त्री—'स्त्री' शब्द **स्त्यै** धातु से उणादि '**स्त्यायत ड्रट्**' सूत्र से ड्रट् प्रत्यय होकर '**स्त्र**' बनता है और ङीप् प्रत्यय होकर '**स्त्री**' शब्द बनता है। नित्यस्त्रीलिङ्ग में होने से यह '**स्त्री**' शब्द नदीसंज्ञक है। '**स्त्री**' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + स्** बना। ङ्यन्त होने से '**हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्**' सूत्र से सकार का लोप होकर '**स्त्री**' रूप बनता है।

हे स्त्रि—सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **स्त्री + स्** बना। इस स्थिति में **यूस्त्र्याख्यौ नदी** सूत्र से स्त्री की नदी संज्ञा होकर **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** सूत्र से स्त्री के ईकार का ह्रस्व होकर और सम्बुद्धि संज्ञक सु के सकार का **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** सूत्र से लोप होकर '**हे स्त्रि**' रूप सिद्ध होता है।

एयङादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

११९. स्त्रियाः।।६।४।७९।।

वृत्ति—अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ। स्त्रियः।

अर्थ—'स्त्री' शब्द को अजादि प्रत्यय परे होने पर ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से 'स्त्री' शब्द के परे अजादि प्रत्यय हो तो 'स्त्री' शब्द के 'ईकार' के स्थान पर 'इयङ्' हो जाता है। 'इयङ्' में ङ् और अकार इत्संज्ञक है केवल '**इय्**' शेष बचता है। ङित् न होने से यह इयङ् आदेश सम्पूर्ण स्त्री के स्थान पर नहीं अपितु अन्त्य वर्ण ईकार के स्थान पर ही होता है।

स्त्रियौ—प्रथमा और द्वितीया विभक्ति द्विवचन में क्रमशः '**औ**' और '**औट्**' प्रत्यय आते है। **स्त्री + औ** इस स्थिति में अजादि प्रत्यय औकार के परे होने पर **स्त्रियाः** सूत्र से स्त्री के अन्त्यवर्ण ईकार को '**इयङ्**' आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्र् + इय् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**स्त्रियौ**' रूप सिद्ध होकर प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में **स्त्रियौ** रूप बनते हैं।

स्त्रियः—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + अस्** बना। इयङ् आदेश होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर **स्त्र् + इय् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग और वर्ण सम्मेलन करने पर '**स्त्रियः**' रूप सिद्ध होता है।

वैकल्पिकेयङ्विधायकं विधिसूत्रम्।

१२०. वाम्शसोः।।६।४।८०।।

वृत्ति—अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्।

स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः स्त्रीः, स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः।

परत्वान्नुट्। स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ। श्रियः।

अर्थ और व्याख्या—अम् और शस् प्रत्यय के परे रहते '**स्त्री**' शब्द को विकल्प से इयङ् आदेश हो। अर्थात् स्त्री-शब्द को '**स्त्रियाः**' सूत्र से नित्य इयङ् आदेश प्राप्त था, किन्तु अम् और शस् प्रत्यय के परे रहते यह इयङ् आदेश विकल्प से होता है।

स्त्रियम्—द्वितीया एक वचन में अम् प्रत्यय आया। **स्त्री + अम्** इस स्थिति में **वाम्शसोः** सूत्र से विकल्प से 'इयङ्' आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्र् + इय् + अम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**स्त्रियम्**' रूप सिद्ध होता है। इयङ् के अभाव पक्ष में **स्त्री + अम्** इस स्थिति में '**अमि पूर्वः**' सूत्र से पूर्व रूप होकर '**स्त्रीम्**' रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियः—द्वितीया बहुवचन में शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + अस्** बना। इस स्थिति में ईकार को इयङ् आदेश और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर '**स्त्रियः**' रूप

सिद्ध होता है। इयङ् आदेश के अभाव पक्ष में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्व सवर्ण दीर्घ होकर और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **स्त्रीः** रूप सिद्ध होता है।

स्त्रिया—तृतीया एकवचन में 'टा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + आ** बना। '**स्त्रियाः**' सूत्र से इयङ् आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्र् + इय् + आ** बना। वर्ण सम्मेलन करके '**स्त्रिया**' रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियै—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + ए** बना। इस स्थिति में नदीसंज्ञक स्त्री शब्द से **आण्नद्याः** से आट् का आगम। **आटश्च** से **आ + ए** को वृद्धि ऐकार आदेश होकर **स्त्री + ऐ** बना। **स्त्रियाः** सूत्र से अन्त्य ईकार को इयङ् (इय्) आदेश होकर **स्त्र् + इय् + ऐ** बना। सवर्ण सम्मेलन कर '**स्त्रियै**' रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियाः—पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय हुए। अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + अस्** बना। इस स्थिति में **आण्नद्याः** से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप, **स्त्री + आ + अस्** में **आटश्च** से वृद्धि एकादेश **स्त्री + आस्** इस स्थिति में **स्त्रियाः** सूत्र से ईकार को '**इयङ्**' इय् आदेश, सकार का रुत्व विसर्ग होकर **स्त्रियाः** रूप सिद्ध होता है।

स्त्रीणाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय, **स्त्री + आम्** इस स्थिति में इयङ् आदेश और नुट् का आगम दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं, परन्तु **ह्रस्वनद्यापोनुट्** से नुट् का आगम होता है, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + नाम्** बनता है। नकार का णकार होकर **स्त्रीणाम्** रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियाम्—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + इ** बना। नदी संज्ञा होकर **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङि के इकार का '**आम्**' आदेश, **स्त्री + आम्** इस स्थिति में **आण्नद्याः** से आट् (आ) का आगम, **स्त्री + आ + आम्** बना। '**आटश्च**' से आ + आ = (आ) वृद्धि होकर **स्त्री + आम्** बना। **स्त्रियाः** सूत्र से इयङ् (इय्) आदेश होकर और वर्णसम्मेलन कर '**स्त्रियाम्**' रूप सिद्ध होता है।

स्त्रिषु—सप्तमी बहुचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **स्त्री + सु** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर '**स्त्रिषु**' रूप सिद्ध होता है।

स्त्री—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रीषः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्

सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियो:	स्त्रिषु
सम्बोधन	हे स्त्रि!	हे स्त्रियो:!	हे स्त्रिय:!

श्री:—श्रयति हरिम् इति श्री:। हरि का आश्रय लेने वाली लक्ष्मी या शोभा। **श्रिञ् सेवायाम्** धातु से क्विप् प्रत्यय, दीर्घ होकर '**श्री**' शब्द बनता है। अत: यह शब्द ङ्यन्त नहीं है।

श्री:—'श्री' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **श्री + स्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **श्री:** रूप सिद्ध होता है।

श्रियौ:—प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय **श्री + औ** इस स्थिति में **अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ** से ईकार का इयङ् आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **श्र् + इय् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**श्रियौ**' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार द्वितीया द्विवचन में भी **श्रियौ** रूप बनता है।

श्रिय:—प्रथमा बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **श्री + अस्** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ** से ईकार को इयङ् (इय्) आदेश होकर **श्र् + इय् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और वर्ण सम्मेलन कर **श्रिय:** रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार द्वितीया बहुवचन में भी **श्रिय:** रूप बनता है।

नदी संज्ञानिषेधकं सूत्रम्।

१२१. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री।।१।४।४।।

वृत्ति—**इयुङुवङो: स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री। हे श्री:। श्रियै, श्रिये, श्रिया: २। श्रिय: २।।**

अर्थ—इयङ् और उवङ् के स्थानी जो दीर्घ ईकार और ऊकार है, उनकी नदी संज्ञा न हो, स्त्री शब्द को छोड़कर।

व्याख्या—यह सूत्र नदी संज्ञा का निषेधात्मक सूत्र है। स्त्री शब्द नदी संज्ञक है, अत: स्त्री शब्द को छोड़कर दीर्घ ईकार और ऊकार का जिनका इयङ् और उवङ् आदेश होता है। उनका इस सूत्र से नदी संज्ञा का निषेध हो जाता है।

हे श्री:—सम्बोधन में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **श्री + स्** बना। **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदी संज्ञा प्राप्त, '**नेयङुवङ्स्थानावस्त्री**' से निषेध होता है और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर तथा हे का पूर्व प्रयोग **हे श्री:** रूप सिद्ध होता है।

श्रियम्—द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय **श्री + अम्** इस स्थिति में **अचि श्नुधातु०**—सूत्र से ईकार का इयङ् (इय्) आदेश, **श्र् + इय् + अम्** बना। वर्ण सम्मेलन कर **श्रियम्** रूप सिद्ध होता है।

श्रिया—तृतीया एक वचन में '**टा**' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **श्री + आ** बनता है। इयङ् (इय्) आदेश होकर **श्रिया** रूप बनता है।

श्रियै, श्रिये—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **श्री + ए** बना। **यूस्त्र्याख्यौ नदी** से नदी संज्ञा प्राप्त थी, किन्तु **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से निषेध होकर

'**ङिति ह्रस्वश्च**' से ङित् होने से विकल्प से नदी संज्ञा होती है और **आण्नद्याः** से आट् का आगम होता है। अनुबन्ध लोप होकर **श्री + आ + ए** बनता है। इस स्थिति में '**आटश्च**' से **अ + ए** में वृद्धि होकर '**ऐकार**' हुआ **श्री + ऐ** में '**अचि श्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ**' से ईकार का इयङ् (इय्) आदेश होकर **श्र् + इय् + ऐ** बना। वर्ण सम्मेलन कर '**श्रियै**' रूप सिद्ध होता है। नदीसंज्ञा के अभाव पक्ष में केवल इयङ् आदेश होकर '**श्रिये**' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार **पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी** के एकवचन में विकल्प से नदीसंज्ञा होकर दो-दो रूप बनेंगे। **यथा—श्रियाः-श्रियः, श्रियाः-श्रियः, श्रियाम्-श्रियि**।

श्रियोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय, इयङ् आदेश और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **श्रियोः** रूप सिद्ध होता है।

वैकल्पिकनदीसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

१२२. वाऽऽमि।।१।४।५।।

वृत्ति—इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू अमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियि, श्रियाम्। धेनुर्मतिवत्।

अर्थ—इयङ् और उवङ् का स्थानी, नित्य स्त्रीलिङ्ग जो दीर्घ ईकार और ऊकार है, उसकी नदी संज्ञा विकल्प से हो, आम् प्रत्यय के परे रहते, स्त्री शब्द को छोड़कर।

व्याख्या—ऐसे नित्य स्त्रिलिङ्ग दीर्घ ईकार और ऊकार जिनका इयङ् और उवङ् आदेश होता है, तो आम् प्रत्यय के परे होने पर उनकी नदी संज्ञा विकल्प से होती है, किन्तु स्त्री शब्द में यह नियम नहीं लगता। अर्थात् **यू स्त्र्याख्यौ** नदी से नित्य प्राप्त नदी संज्ञा इस सूत्र से अम् प्रत्यय के परे होने पर स्त्री शब्द को छोड़कर विकल्प से हो जाती है। नदी संज्ञा होने पर 'नुट्' का आगम होता है। नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में इयङ् आदेश होता है।

श्रीणाम्, श्रियाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय आया। **श्री + आम्** इस स्थिति में '**वाऽऽमि**' सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा होकर **ह्रस्वनाद्यो नुट्** से नुट् का आगम होता है, अनुबन्ध लोप होकर **श्री + नाम्** बनता है। **नामि** से दीर्घ होकर और नकार का **णकार** होकर **श्रीणाम्** रूप बनता है। नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में **अचिश्नुधातु०**—से इयङ् (इय्) आदेश होकर **श्रियाम्** रूप सिद्ध होता है।

श्री—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः

षष्ठी	श्रिया:, श्रिय:	श्रियो:	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियो:	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्री:!	हे श्रियौ!	हे श्रिय:!

।।दीर्घ ईकरान्त शब्द समाप्त।।

ह्रस्व उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनुर्मतिवत्—धेनु शब्द के रूप मति के समान ही बनते हैं। मति शब्द इकरान्त होने से इकार को गुण होकर एकार होता है और धेनु उकारान्त है, अत: उकार को गुण होकर ओकार हो जाता है। 'ङिति ह्रस्वश्च' से विकल्प से नदी संज्ञा तथा ङि प्रत्यय के परे 'इदुद्भ्याम्' से ङि प्रत्यय को आम् आदेश होता है।

धेनु—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनव:
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि:
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य:
पञ्चमी	धेन्वा:, धेनो:	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य:
षष्ठी	धेन्वा:, धेनो:	धेन्वो:	धेनुनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वो:	धेनुषु
सम्बोधन	हे धेनो!	हे धेनू!	हे धेनव:!

तृज्वद् भावविधायकमतिदेशसूत्रम्।

१२३. स्त्रियां च।।७।१।९६।।

वृत्ति—स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते।

अर्थ और व्याख्या—स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्द भी तृजन्तवत् (क्रोष्टृ) रूप को प्राप्त हो। अर्थात् पुल्लिङ्ग क्रोष्टु शब्द से कुछ विभक्तियों के परे तृज्वद्भाव होकर ऋकारान्त हो जाता है, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में विभक्ति की अपेक्षा न होकर, स्त्रीत्व की विवक्षा मात्र में तृज्वद्भाव हो जाता है। क्रोष्टु शब्द क्रोटृ शब्द के रूप में हो जाता है। और ङीप् प्रत्यय होकर क्रोष्ट्री बन जाता है।

ङीप्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्।

१२४. ऋन्नेभ्यो ङीप्।।४।१।५।।

वृत्ति—ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप्।

क्रोष्ट्री गौरीवत्। भ्रूः श्रीवत्। स्वयम्भूः पुंवत्।

अर्थ और व्याख्या—ऋदन्त और नान्त से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो। अर्थात् ऋकार और नकार जिसके अन्त में हो ऐसे शब्दों के स्त्रिलिङ्ग में इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है। **यथा**—क्रोष्टृ शब्द तृज्वद्भाव होने से ऋकारान्त है और स्वामिन् शब्द नकारान्त है अतः इस सूत्र से दोनों को ङीप् प्रत्यय हुआ। ङीप् प्रत्यय में **'हलन्त्यम्'** से प् की इत्संज्ञा, **लशक्वतद्धिते** से ङकार की इत्संज्ञा और **तस्यलोपः** से दोनों इत्संज्ञक वर्णों का लोप होकर 'ई' शेष बचता है।

क्रोष्ट्री—**'क्रोष्टृ'** शब्द से **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टृ + ई** बना। इस स्थिति में **'क्रोष्टृ + ई'** में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **क्रोष्टृ + ई + स्** बना। **इकोयणचि** से ऋकार का यण् (र्) होकर **क्रोष्ट्र्** + ई + **स्** बना। **हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से ङ्यन्त होने से सकार का लोप हो जाता है। वर्ण सम्मेलन कर **'क्रोष्ट्री'** रूप सिद्ध होता है। **'क्रोष्ट्री'** शब्द के सम्पूर्ण रूप गौरीवत् ही बनेंगे।

इसी प्रकार नकारान्त 'स्वामिन्' शब्द से ङीप् प्रत्यय होकर **स्वामिनी** बन जाता है। ङ्यन्त स्त्रीलिङ्ग होने के कारण इनके रूप भी गौरीवत् ही बनते हैं।

स्त्रीलिङ्ग क्रोष्टु—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्ट्री	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्र्यः
द्वितीया	क्रोष्ट्रीम्	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्रीः
तृतीया	क्रोष्ट्र्या	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्र्यै	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
षष्ठी	क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीणाम्
सप्तमी	क्रोष्ट्र्याम्	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीषु
सम्बोधन	हे क्रोष्ट्रि!	हे क्रोष्ट्र्योः!	हे क्रोष्ट्र्यः!

इसी प्रकार से कर्त्री, हर्त्री, विद्यार्थिनी, योगिनी और स्वामिनी आदि के रूप बनते हैं।

।।ह्रस्व उकारान्त शब्द समाप्त।।

दीर्घ ऊकारान्त शब्द

भूः श्रीवत्—**'भू'** शब्द के रूप **'श्री'** शब्दवत् बनते हैं। भू के ऊकारान्त का उवङ् आदेश होकर **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से नदी संज्ञा का निषेध होकर ङित् विभक्ति के परे **ङिति ह्रस्वश्च** से तथा आम् के परे **वाऽऽमि** सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा होने पर **'श्रीवत्'** रूप बनते हैं।

भ्रूः—'**भ्रू**' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, सु का लोप न होकर सकार का रुत्व-विसर्ग हो जाता है और **भ्रूः** शब्द सिद्ध होता है। सम्बोधन में भी '**हे श्रीः**' के समान '**हे भ्रूः**' रूप बनता है।

प्रथमा द्विवचन में भी भ्रू + औ, भ्र् + उवङ् + और, भ्र् + उव् + औ = 'भ्रुवौ' रूप बनता है।

भ्रू—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः
द्वितीया	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः
तृतीया	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः
चतुर्थी	भ्रुवै, भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
पञ्चमी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
षष्ठी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रुवाम्, भ्रूणाम्
सप्तमी	भ्रुवाम्, भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु
सम्बोधन	हे भ्रूः!	हे भ्रुवौः!	हे भ्रुवः!

स्वयम्भूः पुंवत्—दीर्घ ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग स्वयम्भू के रूप पुल्लिङ्ग स्वभू और स्वयम्भू के समान बनते हैं। क्योंकि स्वयम्भू शब्द नित्यस्त्रिलिङ्ग नहीं है, अतः इसमें नदी संज्ञक कोई भी कार्य नहीं होते। यह विशेषण शब्द है, अतः विशेष्य के अनुसार ही इसके रूप बनते हैं।

स्वयम्भूः—'स्वयम्भू' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, सु प्रत्यय का लोप न होकर सकार का रुत्व-विसर्ग होता है और 'स्वयम्भूः' रूप बनता है।

इसी प्रकार **अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होकर **स्वयम्भुवौ**, **स्वयम्भुवः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

।।दीर्घ ऊकारान्त शब्द समाप्त।।

ह्रस्व ऋकारान्त शब्द

ङीप्टाप् निषेधसूत्रम्।

१२५. न षट्स्वस्रादिभ्यः।।४।१।१०।।

वृत्ति—एभ्यो ङीप्टापौ न स्तः।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।

याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः।।

स्वसा। स्वसारौ। माता पितृवत। शसि मातृः।

द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौग्लौवत्।

अर्थ—षट्संज्ञक शब्द और स्वस्रादि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीप्' और 'टाप्' प्रत्यय नहीं होते है।

व्याख्या—यह सूत्र 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से पञ्चन्, षष्, स्वसृ, दुहितृ आदि शब्दों से प्राप्त 'ङीप्' और 'टाप्' प्रत्ययों का निषेध करता है। षट्संज्ञक शब्द और स्वस्रादिगण में पठित शब्दों में स्त्री प्रत्यय न करने पर भी ये स्त्रिलिङ्ग के बोधक है। स्वसृ (बहन) तिसृ (स्त्रीलिङ्ग तीन संख्या) चतसृ (स्त्रीलिङ्ग चार संख्या) ननान्दृ (ननद) दुहितृ (पुत्री) यातृ (देवरानी) मातृ (माता) ये सात स्वस्रादि शब्द कहे जाते हैं। इस स्वस्रादि सप्त शब्दों में ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होता है।

स्वसा—'स्वसृ' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, उकार का लोप होकर **स्वसृ + स्** बना। इस स्थिति में **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च** से ऋकार को अनङ् (अन्) आदेश **स्वस् + अन् + स्** का **अप्तृन्तृच्स्वसृ०**—से उपधा के आकार का दीर्घ होकर **स्वसान् + स्** बना। '**हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्पृक्तं हल्**' से सकार का लोप और '**न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' से नकार का लोप होकर '**स्वसा**' रूप सिद्ध होता है।

स्वसारौ—प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'औ' और औट् प्रत्यय, **स्वसृ + औ** इस स्थिति में **ऋतोङिसर्वनामस्थनयोः** से ऋकार को गुण (अर्) होकर तथा **अप्तृन्तृच्स्वसृ०**—सूत्र + उपधा को दीर्घ होकर **स्वसार् + औ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **स्वसारौ** रूप बनता है।

इसी प्रकार स्वसारः, स्वसारम्, स्वसृः आदि रूप बनते हैं।

स्वसृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसृः
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पञ्चमी	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
षष्ठी	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसृणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु
सम्बोधन	हे स्वसः!	हे स्वसारौ!	हे स्वसारः!

माता पितृवत्—मातृ शब्द के रूप पितृवत् ही बनते हैं। शस् प्रत्यय के परे होने पर स्त्रीलिङ्ग में सकार का नकार नहीं होता अपितु सकार का रुत्व-विसर्ग होकर, पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर मातृः रूप बनता है। मातृ और पितृ शब्दों में सर्वनामस्थान प्रत्ययों के परे रहते उपधा को दीर्घ नहीं होता

नानद्, दुहितृ, यातृ के रूप स्वसृवत् बनते हैं।

मातृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

।।ऋकारान्त शब्द समाप्त।।

ओकारान्त शब्द

द्यौः—ओकारान्त द्यो शब्द आकाश वाचक है। 'द्यो' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया, अनुबन्ध लोप होकर **द्यो + स्** बना। **'ओतो णिदिति वाच्यम्'** वार्तिक से णित् वद्भाव होकर **अचो ञ्णिति** से ओकार को वृद्धि होकर औकार हुआ। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और वर्ण सम्मेलन कर **'द्यौः'** रूप सिद्ध होता है।

अम् और शस् प्रत्यय के परे **औतोऽम्शसोः** से ओकार का आकार एकादेश होकर **द्याम्** और **द्याः** रूप बनते है। द्यो शब्द के रूप गोवत् बनते है। पुल्लिङ्ग में गो-शब्द बैल का वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में गो-शब्द गाय का वाचक है। इसके रूप भी पुल्लिङ्ग के समान होते हैं।

द्यो-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्यौः	द्यावौ	द्यावः
द्वितीया	द्याम्	द्यावौ	द्याः
तृतीया	द्यवा	द्योभ्याम्	द्योभिः
चतुर्थी	द्यवे	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
पञ्चमी	द्योः	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
षष्ठी	द्योः	द्यवोः	द्यवाम्
सप्तमी	द्यवि	द्यवोः	द्योषु
सम्बोधन	हे द्यौः!	हे द्यावौ!	हे द्यावः!

।।ओकारान्त शब्द समाप्त।।

ऐकारान्त शब्द

रा इति—'रै' शब्द के रूप पुल्लिङ्ग 'रै' शब्द के समान ही बनते हैं। 'रै' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **रै + स्** बनता है। **'रायो हलि'** से हल् वर्ण के परे रहते ऐकार का आकार आदेश तथा सकार का रुत्व-विसर्ग होकर 'राः' रूप सिद्ध होता है।

अजादि विभक्ति के परे होने पर **एचोऽयवायावः** से 'ऐकार' के स्थान पर 'आय्' आदेश होता है।

।।ऐकारान्त शब्द समाप्त।।

औकारान्त शब्द

नौः ग्लौवत्—स्त्रीलिङ्ग नाव वाचक 'नौ' शब्द के सभी रूप पुल्लिङ्ग 'ग्लौ' शब्द के समान बनते हैं। इसमें हलादि विभक्ति के परे रहते कोई प्रक्रिया नहीं होती, किन्तु अजादि विभक्ति के परे रहते **एचोऽयवायावः** से औकार का आव् आदेश होता है।

नौ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
द्वितीया	नावम्	नावौ	नावः
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पञ्चमी	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
षष्ठी	नावः	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	नावोः	नौषु
सम्बोधन	हे नौ!	हे नावो!	हे नावः!

।।औकारान्त शब्द समाप्त।।

।।इति अजन्त स्त्रीलिङ्ग प्रकरणम् समाप्तम्।।

अथ अजन्त-नपुंसकलिङ्ग प्रकरणम्

अमादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१२६. अतोऽम्।।७।१।२४।।

वृत्ति—अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्। ज्ञानम्। एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः। हे

अर्थ—अदन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से परे सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश होता है।

व्याख्या—यह सूत्र ह्रस्व अकारान्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से परे 'सु' और 'अम्' प्रत्यय के स्थान पर 'अम्' आदेश करता है। 'अम्' आदेश अनेकाल् है, अतः '**अनेकाल्शित्सर्वस्य**' के नियम से यह अम् आदेश सम्पूर्ण सु और अम् के स्थान पर होता है।

ज्ञानम्—'ज्ञान' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया। **ज्ञान + सु** इस स्थिति में **स्वमोर्नपुंसकात्** से सु का लोप प्राप्त था किन्तु **अतोऽम्** से सु का अम् आदेश होकर **ज्ञान + अम्** बना। **अमिपूर्वः** से पूर्व रूप होकर '**ज्ञानम्**' रूप सिद्ध होता है।

हे ज्ञान—ज्ञान शब्द से सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय आया **ज्ञान + सु** इस स्थिति में **अतोऽम्** से सु का अम् आदेश **ज्ञान + अम्** बना। **अमिपूर्वः** से पूर्वरूप होकर **ज्ञानम्** बना। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सम्बुद्धिसंज्ञक स् का लोप और हे का पूर्व प्रयोग होकर '**हे ज्ञान**' रूप सिद्ध होता है।

शी आदेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१२७. नपुंसकाच्च।।७।१।१९।।

वृत्ति—क्लीबादौङः शीस्यात्। भसंज्ञायाम्।

अर्थ—नपुंसक अङ्ग से परे 'औ' को 'शी' आदेश होता है।

व्याख्या—इस सूत्र का प्रयोग केवल नपुंसकलिङ्ग में ही होता है। अर्थात् नपुंसकलिङ्ग में यदि औङ् (औ) प्रत्यय परे हो तो औकार के स्थान पर शी आदेश हो जाता है। '**शी**' में '**लशक्वतद्धिते**' से श् की इत्संज्ञा, **तस्यलोपः** से श् का लोप होकर 'ई' शेष रहता है। **ज्ञान + ई** इस स्थिति में अजादि प्रत्यय ईकार के परे रहते, उससे पूर्व शब्द ज्ञान की **यचि भम्** से भसंज्ञा होगी।

लोपविधायकंविधिसूत्रम्।

१२८. यस्येति च।।६।४।१४८।।

वृत्ति—ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः। इत्यल्लोपे प्राप्ते।

वार्तिकम्—औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः। ज्ञाने।

अर्थ—ईकार और तद्धित प्रत्यय के परे रहते भसंज्ञक अङ्ग के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो।

व्याख्या—ज्ञान + ई इस स्थिति में **औकार** के स्थान पर किये गये **शी** आदेश के **ईकार** परे होने पर इस सूत्र से ज्ञान के अन्त्य अकार का लोप प्राप्त होता है, किन्तु अग्रिम वार्तिक से इसका निषेध होता है।

(वा०) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः—औङ् (औ) के स्थान पर किये गये 'शी' के ईकार के परे होने पर '**यस्येति च**' से हुए अन्त्य वर्ण अकार के लोप का निषेध हो जाता है, किन्तु अन्यत्र **यस्येति च** से लोप हो जाता है। केवल शी के परे रहते लोप नहीं होता है।

ज्ञाने—ज्ञान शब्द से प्रथमा, द्वितीया के द्विवचन में क्रमशः औ और औट् प्रत्यय, **ज्ञान + औ** इस स्थिति में **नपुंसकाच्च** से औ के स्थान पर शी आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **ज्ञान + ई** बना। **यचि भम्** से ज्ञान शब्द की भसंज्ञा होकर **यस्येति** च से अन्त्य अकार का लोप प्राप्त था किन्तु **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक से उसका निषेध होकर **आदगुणः** से अ + ई = एकार गुण होकर 'ज्ञाने' रूप सिद्ध होता है।

शि आदेशविधायकं विधि सूत्रम्।

१२९. जश्शसोः शिः।७।१।२०।।

वृत्ति—क्लीबादनयोः शिः स्यात्।

अर्थ—नपुंसकलिङ्ग अङ्ग के परे जस् और शस् प्रत्ययों के स्थान पर शि आदेश हो।

व्याख्या—प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय आते है। नपुंसकलिङ्ग में इस सूत्र से जस् और शस् प्रत्यय के परे होने पर 'शि' आदेश हो जाता है। 'शि' में स्थानिवद्भाव होकर प्रत्ययत्व हो जाता है। **लशक्वतद्धिते** से श् की इत्संज्ञा होकर **तस्यलोपः** से श् का लोप होकर 'इ' शेष रहता है।

सर्वनामस्थानसंज्ञाविधायकं संज्ञा सूत्रम्।

१३०. शि सर्वनामस्थानम्।।१।१।४२।।

वृत्ति—'शि' इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात्।

अर्थ—'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा हो।

व्याख्या—इस सूत्र से 'जस्' और 'शस्' के स्थान पर हुए 'शि' आदेश की सर्वनाम संज्ञा होती है। **सुडनपुंसकस्य** से नपुंसकलिङ्ग में सर्वनामस्थान संज्ञा की प्राप्ति नहीं थी, किन्तु उक्त सूत्र से 'शि' की सर्वनामस्थानसंज्ञा का विधान किया गया है।

नुमागमविधायकं विधि सूत्रम्।

१३१. नपुंसकस्य झलचः।।७।१।७२।।

वृत्ति—झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

अर्थ—सर्वनामस्थान के परे नपुंसकलिङ्ग में, झलन्त और अजन्त शब्दों को नुम् का आगम हो।

व्याख्या—झलन्त (झल् प्रत्याहार के वर्ण जिसके अन्त में हो) और अजन्त (अच् अर्थात् स्वर जिसके अन्त में हो) को नपुंसकलिङ्ग में सर्वनामस्थान के परे रहते नुम् का आगम होता है। **यथा**—ज्ञान + इ में शि की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई उसके आदि में ज्ञान शब्द के नकार का अकार अजन्त है, अतः उक्त सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है।

मित् परिभाषा सूत्रम्।

१३२. मिदचोऽन्त्यात्परः।।१।१।४७।।

वृत्ति—अचां मध्ये योऽन्त्यतस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात्।

उपधादीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। एवं धन-वन फलादयः।

अर्थ—अचों के मध्य में जो अन्त्य अच्, उसके परे और उसी का अन्तावयव मित् हो।

व्याख्या—मित् का अर्थ है म् इत्संज्ञक हो जिसका, अर्थात् नुम्। नुम् में उकार और मकार इत्संज्ञक है, अतः उक्त सूत्र से मित् का आगम अन्तिम अच् के परे होता है। **यथा**—ज्ञान + इ इस स्थिति में ज्ञान शब्द में 'आ' और अ दो अच् है; अन्तिम अच् अकार है अतः मित् (नुम्) का आगम अन्त्य अकार के परे ही होता है।

ज्ञानानि—'ज्ञान' शब्द से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **ज्ञान + अस्** बना। **जश्शसोः शिः** से 'अस्' के स्थान पर 'शि' आदेश होकर **ज्ञान + शि** बना। अनुबन्ध लोप होकर **ज्ञान + इ** बना। **शि सर्वनाम स्थानम्** से 'शि' के 'ई' की सर्वनामस्थानसंज्ञा होकर **नपुंसकस्य झलचः** से ज्ञान को नुम् का आगम हुआ, अनुबन्ध लोप होकर न् शेष। **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** इस नियम से नुम् का नकार ज्ञान के अन्त्य अच् के परे आया **ज्ञान + न् + इ** बना। **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधा संज्ञा होकर, **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ होकर **ज्ञानान् + इ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **'ज्ञानानि'** रूप सिद्ध होता है।

प्रथमा के तीनों वचनों के समान ही द्वितीया विभक्ति के तीनों वचनों के रूप सिद्ध होते हैं। और तृतीया से सप्तमी तक अकारान्त पुल्लिङ्ग के समान अकारान्त नपुंसकलिङ्ग के रूप बनते हैं। ज्ञान शब्द के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति **ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि। ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि** ही बनते हैं।

ज्ञान—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृतीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
चतुर्थी	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानात्, ज्ञानाद्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
षष्ठी	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
सप्तमी	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु
सम्बोधन	हे ज्ञान!	हे ज्ञाने!	हे ज्ञानानि!

ज्ञान शब्द के समान ही सभी अकारान्त नपुंसकलिङ्ग धन, वन, फल आदि के रूप बनते हैं।

अद्डादेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१३३. अद्ड्-डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः।।७।१।२५।।

वृत्ति—एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात्।

अर्थ—डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर इन पाँच नपुंसकलिङ्ग शब्दों से परे सु और अम् के स्थान पर अद्ड् आदेश होता है।

व्याख्या—डतर आदि ये पाँच शब्द हैं—डतर, डतम अन्य, अन्यतर, इतर। डतर और डतम ये दो प्रत्यय हैं, इनसे कतर और कतम शब्दों को ग्रहण किया जाता है। अन्यतर शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है, इनमें डतर प्रत्यय नहीं है, अतः उक्त सूत्र से इन पाँचों शब्दों से सु और अम् को अद्ड् आदेश होता है। अद्ड् में डकार इत्संज्ञक होने से डित् है।

टेर्लोपविधायकं विधिसूत्रम्।

१३४. टेः।।६।४।१४३।।

वृत्ति—डिति भस्य टेर्लोपः। कतरत्, कतरद्। कतरे। कतराणि। हे कतरत्। शेषं पुंवत्। एवं कतमत्। इतरत्। अन्यत्। अन्यतरत्। अन्यतमस्य तु अन्यतममित्येव।

वार्तिकम्—एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः। एकतरम्।

अर्थ—डित् के परे होने पर भसंज्ञक अङ्ग के 'टि' का लोप हो।

व्याख्या—भसंज्ञक अङ्ग कतर है उसके परे अद्ड् डित् है। क् + अ + त् + अ + र् + अ में रकारोत्तरवर्ती अकार की **अचोऽन्त्यादि टि** से टि संज्ञा होकर **टेः** इस सूत्र से टि संज्ञक अकार का लोप हो जाता है।

कतरत्, कतरद्—'किम्' शब्द से डतर प्रत्यय होकर 'कतर' शब्द बनता है। 'कतर' शब्द से सु प्रत्यय होकर **कतर + सु** बना। इस स्थिति में '**अतोऽम्**' से 'सु' को 'अम्' आदेश प्राप्त था किन्तु **अद्ड्-डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** से पूर्व सूत्र का निषेध होकर सु के स्थान पर 'अद्ड्' होता है, डकार का लोप होकर **कतर + अद्** बना। **अचोऽन्त्यादि टि** से रकार के अन्त्य अकार की टिसंज्ञा होकर **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है और **कतर् + अद्** बनता है। **वावसाने** से विकल्प से दकार के स्थान पर चर्त्व होकर **कतरत्** रूप बनता है और चर्त्व के अभाव पक्ष में **कतरद्** रूप बनता है।

इसी प्रकार अम् प्रत्यय के परे होने पर **कतरत्, कतरद्** ये दो रूप बनते हैं।

कतरे—'कतर' शब्द से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में क्रमशः औ और औट् प्रत्यय आया। **कतर + औ** इस स्थिति में **नपुंसकाच्च** से औ के स्थान पर शी आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **कतर + ई** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप प्राप्त था किन्तु **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः** से उसका निषेध होकर, **आदगुणः** से **कतर + ई** में गुणादेश होकर '**कतरे**' रूप सिद्ध होता है।

कतराणि—'कतर' शब्द से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में जस् और शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **कतर + अस्** बना। **जश्शसोः शिः** से अस् के स्थान पर शि आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **कतर + इ** इस स्थिति में **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् का आगम, **मिदचोऽन्त्यात् परः** से कतर के रकार के परे नुम् का नकार आया **कतर + न् + इ** में **अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** से उपधा संज्ञा होकर **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा में दीर्घ होकर तथा नकार का णकार होकर '**कतराणि**' रूप सिद्ध होता है।

हे कतरत्—सम्बोधन एकवचन में सु प्रत्यय आया **कतर + सु** में प्रथमा एकवचन के समान सु का अद्ड् आदेश होकर हे का पूर्व प्रयोग करके **हे कतरत्, हे कतरद्** ये दो रूप बनते हैं।

कतर शब्द के प्रथमा, सम्बोधन और द्वितीया के अतिरिक्त शेष सभी रूप अकारान्त पुल्लिङ्ग 'सर्व' शब्द के समान बनते हैं। क्योंकि इन पाँचों शब्दों का सर्वादिगण में पाठ किया गया है।

एवमिति—इसी प्रकार कतम्, इतर, अन्य और अन्यतर शब्दों के रूप बनेंगे।

कतम—कतत् कतमद्, कतमे, कतमानि, हे कतमत्।

इतर—इतरत्-इतरद्, इतरे, इतराणि, हे इतरत्।

अन्य—अन्यत्-अन्यद्, अन्ये, अन्यानि, हे अन्यत्।

अन्यतर—अन्यतरत्-अन्यतरद्, अन्यतरे, अन्यतराणि, हे अन्यतरत्।

(वा०) एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः—यह एक वार्तिक है। एकतर शब्द से परे सु और अम् के स्थान पर अद्ड् आदेश का निषेध होता है। डतर प्रत्ययान्त होने पर भी नपुंसकलिङ्ग 'एकतर' शब्द को अद्ड् आदेश प्राप्त था किन्तु इस वार्तिक से अद्ड् का निषेध हो जाता है और सु का अम् आदेश होकर ज्ञानवत् 'एकतरम्' रूप बनता है। और शेष रूप कतरवत् बनते हैं। एकतरम्, एकतरे, एकतराणि।

।।अकारान्त शब्द समाप्त।।

आकारान्त शब्द

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्।

१३५. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य।।१।२।४७।।

वृत्ति—अजन्तस्येत्येव। श्रीपं ज्ञानवत्।

अर्थ—नपुंसकलिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो।

व्याख्या—यह सूत्र सभी अजन्त शब्दों में ह्रस्व करता है, अतः नपुंसक लिङ्ग में केवल ह्रस्व स्वरान्त शब्द रहते हैं। एकारान्त, ओकारान्त, ऐकारान्त और औकारान्त शब्द भी ह्रस्व होकर इदन्त और उदन्त बन जाते हैं।

श्रीपम्—श्रियं पातीति, **श्रीपा (लक्ष्मी का पालन करने वाला)** 'श्रीपा' शब्द अन्त्य आकार है किन्तु **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से नपुंसकलिङ्ग में पा के आकार का ह्रस्व होकर '**श्रीप**' शब्द बनता है। श्रीप शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आया। सु का अम् आदेश होकर ज्ञानवत् '**श्रीपम्**' रूप बनता है।

द्विवचन और बहुवचन में भी ज्ञाने, ज्ञानानि की तरह श्रीपे, श्रीपाणि रूप बनते हैं। श्रीपाणि में अखण्ड पद या समान पद न होने से '**एकाजुत्तर पदे णः**' सूत्र से नकार का णकार होता है। इसी प्रकार श्रीपेण और श्रीपाणाम् में भी इसी सूत्र से णकार होता है।

।।आकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द समाप्त।।

इकारान्त शब्द

लोपविधायकं विधिसूत्रम्।

१३६. स्वमोर्नपुंसकात्। ।७।१।२३। ।

वृत्ति—लुक् स्यात्। वारि।

अर्थ—नपुंसकलिङ्ग शब्दों से परे 'सु' और 'अम्' प्रत्ययों का लुक् हो।

व्याख्या—लुक् का अर्थ भी अदर्शन ही होता है। किन्तु लोप और लुक् में यह अन्तर है कि लोप होने के पहले जो कार्य होते थे वे कार्य लोप होने के बाद भी **'प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम्'** के बल पर हो जाते हैं। किन्तु प्रत्यय आदि के लुक् हो जाने पर लुक् से पूर्व होने वाले अङ्गसन्बन्धी कार्य नहीं होते। अतः यह सूत्र केवल ह्रस्व अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्त एवं हलन्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों से परे सु और अम् का लुक् करता है।

वारि—(जल) इकारान्त 'वारि' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर वारि + स् बना। **स्वमोर्नपुंसकात्** से सकार का लुक् होकर वारि रूप बनता है। इसी प्रकार द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय आने पर 'स्वमोर्नपुंसकात्' से अम् प्रत्यय का लुक् हो जाता है और द्वितीया एकवचन में भी **'वारि'** रूप बनता है।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्।

१३७. इकोऽचि विभक्तौ। ।७।१।७३। ।

वृत्ति—इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। न लुमतेत्यस्य-नित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। आङो नाऽस्त्रियाम् वारिणा। घेर्ङिति इति गुणे प्राप्ते।

(वार्तिकम्) वृद्धयौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।

वारिणा। वारिणे। वारिणः। वारिणोः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्।

वारिणि। हलादौ हरिवत्।

अर्थ—इगन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग को नुम् का आगम हो, अजादि विभक्ति के परे रहते।

व्याख्या—इस सूत्र से इगन्त शब्द को नुम् का आगम होता है। नुम् में मकार और उकार इत्संज्ञक है, अतः नुम् मित् कहा जाता है। अतः **मिदचोऽन्त्यात्परः** के सहयोग से नुम् का नकार वारि शब्द के अन्त्य स्वर इकार के बाद होगा।

वारिणी—'वारि' शब्द से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में औ और औट् प्रत्यय, **वारि + औ** इस स्थिति में **'नपुंसकाच्च'** से 'औ' के स्थान पर 'शी' आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + ई** बना। **'इकोऽचि विभक्तौ'** से अजादि विभक्ति ईकार के परे रहते इगन्त अङ्ग 'वारि' को नुम् का आगम, अनुबन्ध लोप, होकर **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से नुम् का नकार वारि के इकार के परे आया और **वारि + न् + ई** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार का णकार होकर प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में **वारिणी, वारिणी** रूप बनते है।

वारीणि—प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + अस्** बना। **जश्शसोः शिः** से **अस्** का **शि** आदेश, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + इ** बना। **शि सर्वनामस्थानम्** सूत्र से शि की सर्वनाम स्थान संज्ञा, **इकोऽचिविभक्तौ** से नुम् का आगम, अनुबन्ध लोप **वारि + न् + इ** इस स्थिति में रि के इकार की उपधा संज्ञा होकर **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ, **वारीन् + इ** में नकार को णकार होकर प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में **वारीणि**, रूप **वारीणि** बनते है।

न लुमतेति—'न लुमताङ्गस्य' सूत्र से अनित्य होने के पक्ष में सम्बुद्धि निमित्त गुण होकर **हे वारे!** और **हे वारि!** ये दो रूप बनते हैं।

हे वारे, हे वारि—'वारि' शब्द से सम्बोधन के एकवचन में सु प्रत्यय। **स्वमोर्नपुसंकात्** से सु का लोप हुआ। **प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षणम्** सूत्र से प्रत्यय को मानकर **ह्रस्वस्य गुणः** से ह्रस्वान्त अङ्ग वारि के इकार को गुण (ए) प्राप्त होता है, किन्तु **न लुमताङ्गस्य** से लुक् मानकर गुण का निषेध हो जाता है। **न लुमताङ्गस्य** सूत्र को 'महाभाष्यकार पतञ्जलि' ने अनित्य माना है। जहाँ पर सूत्र अनित्य होता है, वहाँ पर **ह्रस्वय गुणः** से इकार का गुण होकर **वारे + स्** बना और उक्त सूत्र से गुण का निषेध होने पर **वारि + स्** बना। इस दोनों स्थिति में **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से हल् वर्ण स् का लोप और हे का पूर्व प्रयोग होकर **हे वारे, हे वारि** दो रूप बनते हैं।

आङोनेति—वारिणा—तृतीया एकवचन में **टा** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + आ** बना। **आङो नाऽस्त्रियाम्**—से टा के आ को ना आदेश होकर **वारि + ना** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार का णकार होकर **वारिणा** रूप बनता है।

हलादि विभक्ति में नुम् प्राप्त नहीं होता है, अतः वारि शब्द के रूप हरिवत् बनते हैं।

वारिभ्याम्—तृतीय, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में **वारि** शब्द में **भ्याम्** प्रत्यय जोड़कर **वारिभ्याम्** रूप बनते हैं।

वारिभिः—तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय आया। **वारि + भिस्** में सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **वारिभिः** रूप सिद्ध होता है।

(वा०) वृद्ध्यौत्त्व इति—पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव और गुण से पूर्व नुम् का आगम होता है।

वारिणे—'वारि' शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + ए** बना। **'घेर्ङिति'** से गुण की प्राप्ति थी किन्तु उक्त वार्तिक सूत्र से निषेध होकर **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् (न्) का आगम, **वारिन् + ए** इस स्थिति में नकार का णकार होकर और वर्ण सम्मेलन कर '**वारिणे**' रूप सिद्ध होता है।

वारिभ्यः—चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् प्रत्यय, **वारि + भ्यस्** इस स्थिति में सकार का रुत्व-विसर्ग, और वर्ण सम्मेलन कर **वारिभ्यः** रूप सिद्ध होता है।

वारिणः—पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + अस्** बना। इस स्थिति में **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् (न्) का आगम और नकार का णकार होकर **वारिन् + अस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और वर्णसम्मेलन कर **वारिणः** रूप सिद्ध होता है।

वारिणोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय, **वारि + ओस्** में नुम् (न्) का आगम **वारिन् + ओस्**, सकार का रुत्व-विसर्ग होकर और नकार का णकार होकर **वारिणोः** रूप बनता है।

वारीणाम्—वारि शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय, **वारि + आम्** में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् और **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् की प्राप्ति होती है, यद्यपि नुट् की अपेक्षा नुम् पर है, अतः नुम् ही होना चाहिए था तथापि **नुम चिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन** इस वार्तिक से नुम् की अपेक्षा नुट् के प्रबल होने से नुट् का आगम होता है, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + नाम्** बना। **नामि** सूत्र से दीर्घ, नकार का णकार होकर और वर्ण सम्मेलन कर **वारीणाम्** रूप बनता है।

वारिणि—वारि शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + इ** बना। नुम् का आगम, नकार का णकार होकर **वारिण् + इ** बना। वर्ण सम्मेलन कर **वारिणि** रूप बना।

वारिषु—सप्तमी बहुवचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **वारि + सु** बना। **आदेश प्रत्यययोः** से सकार का षकार होकर '**वारिषु**' रूप बनता है।

वारि—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे! हे वारि!	हे वारिणी!	हे वारीणि!

पुंवद्भावविधायकमतिदेश सूत्रम्।

१३८. तृतीयादिषु भाषितपुंसकं पुंवद् गालवस्य।।७।१।७४।।

वृत्ति—प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद् वा टादावचि। सुधिया, सुधिने।

अर्थ—प्रवृत्तिनिमित्त के एक होने पर भाषित पुंस्क इगन्त नपुंसक शब्द विकल्प से पुल्लिङ्गवत् होता है, तृतीया आदि अजादि विभक्ति के परे होने पर।

व्याख्या—इस सूत्र से टा अजादि विभक्ति के परे होने पर, प्रवृत्तिनिमित्त के एक होने पर जो शब्द पुंस्त्व का बोध कराते हैं अर्थात् जो शब्द पुल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होते हैं, उस इगन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव हो जाता है।

प्रवृत्तिनिमित्त—प्रत्येक शब्द का अपने अर्थ का बोध कराने हेतु कोई एक निमित्त अवश्य होता है, उसे प्रवृत्ति निमित्त कहते हैं। यथा—ब्राह्मण अर्थ का बोध कराने के लिए ब्राह्मण-शब्द प्रवृत्त होता है और उस प्रवृत्ति का निमित्त होता है ब्राह्मणत्व। अतः प्रवृत्ति निमित्त का सीधा अर्थ है, उसका अर्थ, जिस निमित्त को लेकर शब्द का प्रयोग होता है वह उस शब्द के अर्थ का बोध कराता है। वह अर्थ ही प्रवृत्ति निमित्त है।

भाषितपुंस्क—एक ही प्रवृत्ति निमित्त को लेकर पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त हुआ शब्द यदि नपुंसकलिङ्ग में भी प्रयुक्त होता है तो उसे भाषितपुंस्क कहते हैं।

सुधी शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों ही स्थानों पर प्रयुक्त होता है और दोनों ही स्थानों पर इसका प्रवृत्ति निमित्त अर्थात् इसका अर्थ भी '**अच्छी बुद्धि वाला**' एक समान ही रहता है। अतः सुधी शब्द भाषित पुंस्क कहलायेगा। सुधी शब्द से पुंवद्भाव होकर इसके रूप पुल्लिङ्गवत् ही बनेंगे।

आचार्य गालव के मतानुसार ऐसे शब्दों में पुंवद्भाव होता है, परन्तु महर्षि पाणिनि के मतानुसार नपुंसक ही रहता है, अतः यहाँ विकल्प से पुंवद्भाव का विधान किया गया है।

भाषितपुंस्क को निम्न कारिका से स्पष्ट किया गया है—

'यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्त्तते।
क्लीबवृत्ति तदेव स्यादुक्त पुंस्कं तदुच्यते।।१।।
पीलुर्वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं, तज्जत्वं तत्फले पुनः।।२।।

अर्थात् पीलु एक वृक्ष को भी कहते हैं और पीलु उसके फल को भी कहते हैं। यद्यपि इस पीलु शब्द का पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में प्रयोग होता है तथापि दोनों का प्रवृत्ति निमित्त एक नहीं होता, पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त पीलु का अर्थ पीलु वृक्ष है, पर नपुसंकलिङ्ग में प्रयुक्त पीलु शब्द का अर्थ पीलु वृक्ष का फल है। अतः प्रवृत्ति निमित्त में भिन्नता होने से पुंवद् भाव नहीं होगा, अतः ऐसे शब्द भाषितपुंस्क नहीं कहलायेंगे। नपुंसकलिङ्ग में फल अर्थ में प्रयुक्त पीलु शब्द का चतुर्थी एकवचन में 'पीलुने' रूप बनता है, और पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त वृक्ष अर्थ में पीलु शब्द का चतुर्थी एकवचन में 'पीलवे' रूप बनता है। वृक्ष अर्थ में पीलु शब्द का प्रवृत्ति निमित्त पीलुत्व या तज्जत्व है।

सुधिया, सुधिना—'सुधी' शब्द से नपुंसकलिङ्ग में ह्रस्व होकर तृतीया एक वचन में टा प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर **सुधि** + **आ** बना। **तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुम्वद् गालवस्य-सूत्र** से पुंवद् भाव होकर 'सुधि + आ' इस स्थिति में **अचि शनुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर '**सुधिया**' रूप बनता है और पुंवद् भाव के अभाव पक्ष में **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् होकर सुधिना रूप बनता है।

इसी प्रकार अजादि विभक्ति में पुंवद् भाव में इयङ् आदेश और उसके अभाव पक्ष में नुम् होकर दो-दो रूप बनते हैं।

सुधी—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृतीया	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
षष्ठी	सुधियः, सुधिनः	सुधियोः, सुधिनोः	सुधियाम्, सुधीनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	सुधियोः, सुधिनोः	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधे! हे सुधि!	हे सुधिनी!	हे सुधीनी!

सुधि शब्द के रूप वारिवत् ही बनते हैं। प्रधी आदि भाषितपुंस्क शब्दों के रूप भी पुंवद् भाव होकर इसी प्रकार बनते हैं।

अनङ् आदेशविधायकं विधिसूत्रम्।

१३९. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः।।७।१।७५।।

वृत्ति—एषामनङ् स्याट्टादावचि।

अर्थ—तृतीयादि अजादि विभक्ति के परे होने पर अस्थि, दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों के इकार को अनङ् आदेश होता है।

व्याख्या—उक्त सूत्र के द्वारा अस्थि (हड्डी) दधि (दही) सक्थि (जंघा) और अक्षि (आँख) शब्दों को टा आदि अजादि प्रत्यय टा, ङसि, ङस्, ओस्, आम् और ङि परे होने पर अनङ् आदेश होता है। अनङ् में ङकार और नकारारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा और लोप होकर अन् शेष रहता है। ङित् होने के कारण ङिच्च से अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर ही अनङ् आदेश होता है।

अल्लोपविधायकं विधसूत्रम्।

१४०. अल्लोपोऽनः।।६।४।१३४।।

वृत्ति—अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः।

दध्ना। दध्ने। दध्नः। दध्नोः। दध्नोः।

अर्थ और व्याख्या—सर्वनामस्थान से भिन्न, अङ्ग का अवयव जो अन्, यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्यय के परे होने पर अन् के अकार का लोप होता है।

दध्ना—दधि + टा, अनुबन्ध लोप, **दधि + आ** में **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः** से अनङ् (अन्) आदेश **दधन् + आ** बना। **अल्लोपोऽनः** से अन् के अकार का लोप होकर **दध्ना** रूप बनता है।

दध्ने—चतुर्थी एकवचन में ङे प्रत्यय, लोप होकर **दधि + ए** इकार का अनङ्, अन् के अकार का लोप होकर **दध्ने** रूप बनता है।

दध्नः—पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में **ङसि** और **ङस्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **दधि + अस्** बना। अनङ् (अन्) आदेश **दधन् + अस्** में अन् के अकार का लोप सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **दध्नः** रूप बनता है।

दध्नोः—षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् प्रत्यय, **दधि + ओस्** इकार का अनङ् (अन्) **दधन् + ओस्,** अन् के अकार का लोप सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **दध्नोः** रूप बनता है।

दध्नाम्—षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय, **दधि + आम्** में इकार का अनङ् आदेश, अन् के अकार का लोप होकर **दध्नाम्** रूप बनता है।

वैकल्पिक अल् लोपविधायकं विधि सूत्रम्।

१४१. विभाषा ङिश्योः।।६।४।१३६।।

वृत्ति—अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः। दध्नि, दधनि। शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थ्यक्षि। सुधि सुधिनी। सुधीनि। हे सुधे, हे सुधि।

अर्थ—सर्वनाम स्थान भिन्न यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्यय रूप ङि और शी के परे होने पर अङ्ग का अवयव जो अन्, उसके अकार का विकल्प से लोप होता है।

व्याख्या—इस सूत्र से सर्वनामस्थान से भिन्न अर्थात् सर्वनामस्थान प्रत्यय जिसके परे न हो ऐसे ङि और शी प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग का अवयव जो अन् है उस अन् के अकार का विकल्प से लोप हो जाता है।

दध्नि, दधनि—सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **दधि + इ** बना। **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः** से दधि के इकार को अनङ् (अन्) आदेश **दध् + अन् + इ, दधन् + इ** इस स्थिति में **विभाषा ङिश्योः** सूत्र से ङि प्रत्यय के परे होने पर विकल्प से अन् के अकार का लोप होता है और 'दध्नि' रूप बनता है और विकल्प से लोप के अभाव पक्ष में **'दधनि'** रूप बनता है।

दधि-शब्द के शेष रूप **वारिवत्** बनते हैं।

अस्थि, सक्थि और **अक्षि** शब्द के रूप **दधिवत्** ही बनेंगे।

दधि—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दधनि, दध्नि	दध्नोः	दधिषु
सम्बोधन	हे दधे! हे दधि!	हे दधिनी!	हे दधीनी!

उकारान्त शब्द

'मधु मद्ये पुष्परसे' उकारान्त नपुंसकलिङ्ग में 'मधु' शब्द के रूप वारिवत् बनते हैं। **मधु** शब्द में **नुम्** के **नकार** का **णकार** नहीं होता है। **मधु, मधुनी, मधूनि।**

मधु—मधु (शहद) शब्द से प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में सु और अम् प्रत्यय, **स्वमोर्नपुंसकात्** से सु और अम् का लोप होकर **मधु** रूप बनता है।

मधुनी—प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में औ और औट् प्रत्यय, **मधु + औ** में **नपुंसकाच्च** से 'औ' का 'शी' आदेश, अनुबन्ध लोप **मधु + ई, इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् (न्) का आगम **मधुन् + ई** में वर्ण सम्मेलन कर **'मधुनी'** रूप सिद्ध होता है।

मधूनि—प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **मधु + अस्** में **जश्शसोः शिः** से अस् को शि (इ) आदेश **मधु + इ** में **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् (न्) **मधुन् + इ**, उपधासंज्ञा, **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ होकर **'मधूनि'** रूप बनता है।

मधु—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	हे मधो! हे मधु!	हे मधुनी!	हे मधूनि!

धातृ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वितीया	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृतीया	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे, धात्रणे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः धातृणः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः,धातृणः	धात्रोः, धातृणोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातरि,धातृणि	धात्रोः, धातृणोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः! हे धातृ!	हे धातृणी!	हे धातॄणि!

।।ऋकारान्त शब्द समाप्त।।

ओकारान्त शब्द

नियमसूत्रम्—

१४२. एच इग्घ्रस्वादेशे।।१।१।४८।।

वृत्ति—आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात्।

प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्। प्रराभ्याम्। प्ररीणाम्। सुनु। सुनुनी। सुनूनि। सुनुनेत्यादि।

अर्थ—एच् के स्थान पर जहाँ ह्रस्व करना तो वहाँ इक् ही ह्रस्व हो।

व्याख्या—अर्थात् एच् प्रत्याहार के वर्ण हैं ए, ओ, ऐ, औ। ये वर्ण दीर्घ हैं इनका ह्रस्व वर्ण नहीं है। यदि एच् को ह्रस्व करना है तो कौन सा वर्ण हो ? इस समस्या के समाधान के लिए यह सूत्र नियम करता है कि एच् वर्णों (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान पर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से इक् वर्ण हो। अर्थात् **'एकार'** और **'ऐकार'** के स्थान पर **'इकार'** तथा **ओकार** और **औकार** के स्थान पर **उकार** ही आदेश हो। इनमें ह्रस्व वर्ण अकार को सम्मिलित नहीं किया गया है।

प्रद्यो—प्रकृष्टा द्यौर्यस्मिन् दिने, तद् (दिनम्) स्वच्छ आकाश वाला दिन **प्रद्यु**। **प्रद्यो** शब्द को **ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य** से ह्रस्व का विधान हुआ तो **एच इग्घ्रस्वादेशे** के नियम से ओकार के स्थान पर उकार ह्रस्व होकर **प्रद्यु** शब्द बना। प्रद्यु शब्द के सम्पूर्ण रूप **'मधु'** शब्दवत् बनेंगे।

प्रद्यो—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रद्यु	प्रद्युनी	प्रद्यूनि
द्वितीया	प्रद्यु	प्रद्युनी	प्रद्यूनि
तृतीया	प्रद्युना	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभिः
चतुर्थी	प्रद्युने	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभ्यः
पञ्चमी	प्रद्युनः	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभ्यः
षष्ठी	प्रद्युनः	प्रद्युनोः	प्रद्यूनाम्
सप्तमी	प्रद्युनि	प्रद्युनोः	प्रद्युषु
सम्बोधन	हे प्रद्यो ! हे प्रद्यु !	हे प्रद्युनीः !	हे प्रद्यूनि !

।।ओकरान्त शब्द समाप्त।।

ऐकारान्त शब्द

प्ररि, प्ररिणी, प्रीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्—प्राभ्याम्।

प्ररि—'प्रकृष्टो राः' (विपुल धन वाला कुल) 'प्रै' शब्द में **'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य'** सूत्र से ऐकार को **एच इग्घ्रस्वादेशे** के नियम से ऐकार का ह्रस्व इकार होकर **प्ररि** शब्द बनता है और प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'सु' प्रत्यय हुआ। **स्वमोर्नपुंसकात्** से **सु** का लोप होकर **'प्ररि'** रूप बनता है।

एकदेशेति—'प्रै' जब **'प्ररि'** बन जाता है तो अजादि विभक्ति के परे रहते उसके रूप वारिवत् बनते हैं किन्तु **एकदेशविकृत न्यायेन** भ्याम्, भिस्, भ्यस् सुप् इन हलादि विभक्तियों के परे होने पर **'रायो हलि'** से ऐकार को आकार हो जाता है।

प्राभ्याम्—ह्रस्व होकर **प्ररि + भ्याम्** बना। **'एकदेशविकृतमनन्यवत्'** न्याय से मानकर **रायो हलि** से **रै** के ऐकार को आकार आदेश होकर **प्राभ्याम्** रूप बनता है।

प्रै—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्ररि	प्ररिणी	प्रीणि
द्वितीया	प्ररि	प्ररिणी	प्रीणि
तृतीया	प्ररिणा	प्राभ्याम्	प्राभिः
चतुर्थी	प्ररिणे	प्राभ्याम्	प्राभ्यः
पञ्चमी	प्ररिणः	प्राभ्याम्	प्राभ्यः
षष्ठी	प्ररिणः	प्ररिणोः	प्रीणाम्
सप्तमी	प्ररिणि	प्ररिणोः	प्रासु
सम्बोधन	हे प्रै ! हे प्ररि !	हे प्ररिणी !	हे प्रीणि !

।।ऐकरान्त शब्द समाप्त।।

औकारान्त शब्द

सुनु, सुनुनी, सुनुनि, सुनुनेत्यादि।

सुनु—सुष्ठु नौर्यस्य तत् कुलम्, **सुनु**। सुन्दर नाव वाला कुल। **सुनौ** शब्द का **'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य'** सूत्र से **'एच इग्घ्रस्वादेशे'** सूत्र के नियम से औकार का ह्रस्व उकार होकर **सुनु** बनता है और 'सुनु' के सम्पूर्ण रूप मधुवत् बनेंगे।

सुनौ—शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुनु	सुनुनी	सुनूनि
द्वितीया	सुनु	सुनुनी	सुनूनि
तृतीया	सुनुना	सुनुभ्याम्	सुनुभिः
चतुर्थी	सुनुने	सुनुभ्याम्	सुनुभ्यः
पञ्चमी	सुनुनः	सुनुभ्याम्	सुनुभ्यः
षष्ठी	सुनुनः	सुनुनोः	सुनूनाम्
सप्तमी	सुनुनि	सुनुनोः	सुनुषु
सम्बोधन	हे सुनो! हे सुनु!	हे सुनुनी!	हे सुनूनि!

।।इत्यजन्त नपुंसकलिङ्ग प्रकरणम्।।

।।इति अजन्त प्रकरणम् समाप्त।

✤

परीक्षोपयोगी प्रश्न

- **बहुविकल्पीय**

१. जिनके अन्त में सुप् प्रत्यय लगते है उन्हें कहते हैं—
(क) सुबन्त, (ख) हलन्त, (ग) तिङन्त, (घ) अजन्त।

२. बहुत्व संख्या की विवक्षा में बहुवचन करने वाला सूत्र है—
(क) बहुवचने झल्येत्, (ख) बहुषु बहुवचनम्,
(ग) नादिचि, (घ) चुटू।

३. राम शब्द के चतुर्थी एकवचन में रूप बनता है—
(क) रामेण, (ख) रामस्य, (ग) रमया, (घ) रामाय।

४. सर्व शब्द से पञ्चमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) सर्वस्मात्, (ख) सर्वात्, (ग) सर्वे, (घ) सर्वान्।

५. विश्व शब्द के षष्ठी बहुवचन में रूप बनता है—
(क) विश्वसाम, (ख) विश्वेषाम्, (ग) विश्वान्, (घ) विश्वेन्।

६. विश्वपा शब्द से चतुर्थी एकवचन में रूप बनता है—
(क) विश्वे, (ख) विश्वपः, (ग) विश्वपे, (घ) विश्वाम्।

७. हाहा शब्द के सप्तमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) हाहे, (ख) हाहाः, (ग) हाहू, (घ) हहे।

८. हरि शब्द के षष्ठी द्विवचन में रूप बनता है—
(क) हरयो, (ख) हरौ, (ग) हर्योः, (घ) हरयः।

९. हरि शब्द के द्वितीया बहुवचन में रूप बनता है—
(क) हरिम्, (ख) हरये, (ग) हरीन्, (घ) हरयः।

१०. सखि शब्द से प्रथमा एकवचन में रूप बनता है—
(क) सखिः, (ख) सखः, (ग) सख्युः, (घ) सखा।

११. 'पाति लोकमिति पपीः' का अर्थ है—
(क) सूर्य, (ख) चन्द्र, (ग) पापी, (घ) पानी।

१२. शम्भु शब्द के सप्तमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) शम्भू, (ख) शम्भु, (ग) शम्भौ, (घ) शम्भो।

१३. रमा शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में रूप बनता है—
(क) रमाः, (ख) रामे, (ग) रमा, (घ) रमे।

१४. आबन्तस्त्रीलिङ्ग सर्वा-शब्द के चतुर्थी एक वचन में रूप बनता है—
(क) सर्वस्यै, (ख) सर्वये, (ग) सर्वाय, (घ) सर्वस्य।

१५. नदी शब्द से सप्तमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) नद्या, (ख) नद्यौ, (ग) नद्याम्, (घ) नदी।

१६. नदी शब्द के द्वितीया बहुवचन में रूप बनता है—
(क) नद्यौ, (ख) नदी, (ग) नदीम्, (घ) नदीः।

१७. स्त्री शब्द से तृतीया एक वचन में रूप बनता है—
(क) स्त्रिया, (ख) स्त्रीया, (ग) स्त्रीः, (घ) स्त्रि।

१८. मातृ शब्द के तृतीया एक वचन में रूप बनता है—
(क) मात्रेण, (ख) माता, (ग) मात्रा, (घ) मातृः।

१९. मातृ शब्द के पञ्चमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) मातये, (ख) मातरि, (ग) मात्रोः, (घ) मातुः।

२०. किस शब्द के प्रथमा और द्वितीया के तीनों वचनों के रूप एक समान बनते हैं—
(क) नदी, (ख) मति, (ग) वारि, (घ) श्री।

२१. वारि शब्द के सप्तमी बहुवचन में रूप बनता है—
(क) वारिषु, (ख) वारीसु, (ग) वारि, (घ) वारीणि।

२२. दधि शब्द से पञ्चमी एकवचन में रूप बनता है—
(क) दधिनः, (ख) दध्ना, (ग) दधीनि, (घ) दध्नः।

२३. रमा शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय आने पर रूप बनता है—
(क) रमौ, (ख) रमे, (ग) रमयोः, (घ) रमायै।

उत्तरमाला

१. (क), २. (ख), ३. (घ), ४. (क), ५. (ख), ६. (ग), ७. (क), ८. (ग), ९. (ग), १०. (घ), ११. (क), १२. (ग), १३. (घ), १४. (क), १५. (ग), १६. (घ), १७. (क), १८. (ग), १९. (घ), २०. (ग), २१. (क), २२. (घ), २३. (ख)।

- **लघुउत्तरीय**

१. 'टाङसिङसामिनात्स्या' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
२. विभक्ति किसे कहते है ? सूत्र सहित लिखिए।
३. सम्बुद्धिसंज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या कीजिए।
४. इत्संज्ञा निषेध सूत्र की व्याख्या कीजिए।
५. स्थानिवद्भाव किसे कहते हैं ?
६. राम शब्द के तृतीया और चतुर्थी के एकवचन की सिद्धि कीजिए।
७. नदीसंज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या उदाहरण सहित लिखिए।
८. घिसंज्ञाविधायकं संज्ञा सूत्र की व्याख्या कीजिए।
९. औङ आपः और आङि चापः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१०. याडापः सूत्र का प्रयोग उदाहरण सहित लिखिए।
११. इदुद्भ्याम् सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१२. 'रमायाम्' शब्द की सिद्धि कीजिए।
१३. 'सर्वस्याम्' शब्द की सिद्धि कीजिए।
१४. 'मतीः' शब्द की सिद्धि कीजिए।
१५. 'स्त्रियै' शब्द की सिद्धि कीजिए।
१६. 'नपुंसकाच्च' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१७. 'जश्शसोः शिः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१८. दध्नाम् शब्द की सिद्धि कीजिए।
१९. 'मधुभ्यः' शब्द की सिद्धि कीजिए।
२०. स्वमोर्नपुंसकात् सूत्र की व्याख्या कीजिए।

- **दीर्घउत्तरीय**

१. निर्जर शब्द के द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी के तीनों वचनों के रूप सिद्ध कीजिए।
२. सुप् प्रत्ययों में अजादि और हलादि प्रत्ययों का विभाजन कीजिए।
३. घिसंज्ञा के द्वारा कौन-कौन से कार्य सिद्ध होते हैं ? पाँच उदाहरण सहित समझाइये।
४. नदीसंज्ञा और घि संज्ञा में क्या अन्तर है ? स्पष्ट कीजिए।
५. ङिद्विभक्ति के विषय में आप क्या जानते हैं ? विस्तार से वर्णन कीजिए।
६. वारि शब्द में अतोऽम् से अम् क्यों नहीं होता ? और ज्ञान शब्द में स्वमोर्नपुंसकात् से लुक् क्यों नहीं होता ?
७. प्रवृत्तिनिमित्त क्या है ? स्पष्ट कीजिए।
८. एच् इग्घ्रस्वादेशे सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
९. उपधा संज्ञा का प्रयोग कहाँ-कहाँ होता है ?
१०. उकारान्त स्त्रीलिङ्ग धेनु-शब्द के चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के तीनों वचनों के रूप विकल्प सहित सिद्ध कीजिए।

✤

YP

युवराज पब्लिकेशन्स

42, लता कुंज, मथुरा रोड, आगरा-282002

मो० : 09410663109, 08477062070

E-mail : yuvrajpublications@gmail.com